मुनिश्री १०८ प्रमाणसागर जी महाराज के प्रवचनों से संकलित

प्रमाणिक कहानियाँ

(भाग-1)

संकलन

बा.ब्र. रोहित भैया

(सम्प्रति संधानसागर जी महाराज,
संघस्थ आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज)

प्रकाशक

निर्ग्रंथ फाउण्डेशन, भोपाल

- कृति : प्रमाणिक कहानियाँ (भाग-1)
- प्रवचनकार : मुनि श्री 108 प्रमाणसागरजी महाराज
- संकलनकर्ता : बा.ब्र. रोहित भैया (सम्प्रति संधानसागर जी महाराज, संघस्थ आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज)
- संस्करण : प्रथम, मार्च 2018
- आवृत्ति : 1100
- मूल्य : सदुपयोग
- प्राप्ति स्थल : 1. श्री प्रशान्त जैन, भोपाल (म.प्र.)
  मो. 9617700813
  2. 'गुणायतन' शिखर जी, मधुवन
  फोन : 06558-232438
- प्रकाशक : निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन, भोपाल
- मुद्रक : विकास आफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
  45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र
  गोविन्दपुरा, भोपाल (म.प्र.)
  फोन : 0755-2601952, 425005624

मंगल-कामना

आज पूरा संसार भौतिकता की चकाचौंध एवं पाश्चात्य संस्कृति की मार से ग्रसित हो रहा है। इस समय हमें अपने इतिहास को दोहराने की परम आवश्यकता है। अब 'विज्ञान की नहीं हमें इतिहास' की जरूरत है। वर्तमान युग कम्प्यूटर-मोबाइल-इंटरनेट का युग है। ऐसे में हमारे धर्म ध्यान का तरीका भी परिवर्तित हो गया। इन साधनों से हमारे ज्ञान का तरीका भी परिवर्तित हो गया। इन साधनों से हमारे ज्ञान का जो विकास होना चाहिए वह नहीं हुआ अपितु अवनति की ओर चला गया।

अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा ने सब चौपट कर दिया। गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा पद्धति में हर बात को कहानी एवं उदाहरणों से समझाया जाता था। वे कहानी एवं उदाहरण आजन्म याद रहते थे एवं प्रतिपल शिक्षा देते रहते थे। आज का व्यक्ति इन्हें मात्र किस्से-कहानी के रूप में लेकर छोड़ देता है जब कि ये किस्से-कहानी बताते हैं कि आपको जीवन में **किससे और क्या हानि है**?

पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागरजी महाराज जिनकी ओजस्वी वाणी जन-जन को प्रभावित करती है। वे अपने प्रवचनों में सरल एवं सटीक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिससे उनकी वाणी को सभी समझते हैं एवं ग्रहण करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मुनिश्री द्वारा अपने प्रवचनों में जिन कहानी एवं किस्सों का उल्लेख किया जाता है। उन्हीं को संकलित कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

मेरी यह भावना है कि हम इन कहानियों के माध्यम से सार की बात समझें। पाठशालाओं में बच्चों को ये कहानियाँ अवश्य सुनायें। इससे उनमें हेय-उपादेय की क्षमता का विकास होगा। पूज्य मुनि श्री की सकारात्मक सोच

सभी जानते हैं। इन कहानियों के माध्यम से हम भी उसे अपने में विकसित करें।

ज्यादा कुछ नहीं हमें पुनः उसी भारत को लौटाना है जहाँ दादी-माँ एवं नानी-माँ कहानी-कहानी में अध्यात्म की बातें पिला देती थी। आचार्य गुरुवर एवं पूज्य मुनिश्री के पावन चरणों में बारम्बार नमोऽस्तु करता हुआ यही भावना भाता हूँ कि 'प्रमाणिक कहानियाँ' के माध्यम से हम अपने शाश्वत स्वरूप को निहार सकें।

- बा.ब्र. रोहित भैया

(सम्प्रति संधानसागर जी महाराज,
संघस्थ आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज)

परम पूज्य मुनि श्री १०८ संधानसागरजी महाराज
प्रतिदिन आचार्य भगवन् की वाणी लिखते हैं।
आप चाहते हैं तो इस Link
aagamdata.blogspot.in
से प्राप्त करें ।
अधिक जानकारी के हेतु सम्पर्क करें :
वरुण जैन - ९४२४४५११७९

अनुक्रमणिका

1.	श्रद्धा लगाती पार	9
2.	सत्य से मत भागो	11
3.	मत उलझो रूप में	12
4.	एकाउण्टेन्ट बनें - मालिक नहीं	13
5.	सच्ची पूजा : सच्ची भक्ति	16
6.	दृष्टि चर्म पर नहीं, मर्म पर हो	17
7.	क्रिया की प्रतिक्रिया	18
8.	परिवर्तन भीतर से हो	19
9.	हार में जीत	20
10.	मिलें दूध में पानी जैसे	22
11.	कैसे कटी नाक सूर्पनखा की?	24
12.	प्रेम के आगे हारी हिंसा	25
13.	सबसे बड़ा आश्चर्य	27
14.	सीधी जिंदगी जिओ	28
15.	सारा खेल नजरिये का	29
16.	सीखों भवतरणी विद्या	30
17.	क्रोध का परिणाम - मुनि बना सर्प	31
18.	टूटा पापड़	32
19.	पर्ची का जवाब पर्ची से	33
20.	यह भी बीत जायेगा	34
21.	मन की बीमारी का इलाज नहीं	36
22.	जो होता है सही होता है	37
23.	बेटा झूठा या पिताजी	38
24.	यथा नाम तथा काम	39
25.	जैसी संगत-वैसी रंगत	39
26.	विचारों से बनता संसार	40

27.	आधा गिलास दूध	41
28.	गुण ग्रहण का भाव रहे नित	41
29.	माँ का आदमी	42
30.	जहाँ प्रेम वहाँ लक्ष्मी	44
31.	धर्म जीवन का आधार	45
32.	अंजन बना निरंजन	46
33.	अनेकान्त दृष्टि हो	49
34.	नजरिया अपना-अपना	50
35.	सुधार की संभावना	50
36.	ऐसे होता है स्थितिकरण	51
37.	सेठ हो तो सुगनचन्द जैसा	53
38.	वात्सल्य हो तो ऐसा	54
39.	वचनों की कीमत	56
40.	अपनी करनी आप ही भुगतो	57
41.	आत्मबोध	59
42.	यूज़ करें, मिसयूज़ नहीं	60
43.	बर्तन तपाना अनिवार्य	60
44.	दूसरो के अनुभव से सीखो	61
45.	नाटक में ना अटक	61
46.	खोलो आँख विवेक की	62
47.	हिराय दयो हीरा	63
48.	ईश्वर दर्पण है	64
49.	प्रार्थना शब्द से नहीं भाव से हो	65
50.	विवेकानन्द की सकारात्मकता	65
51.	परिणामों की विचित्रता	66
52.	टिकटिकायें नहीं-टंकार करें	68
53.	अन्याय का रक्त	68
54.	गुण ग्रहण का भाव रहे नित	69

55.	दोष वादे च मौनं	70
56.	विनय से आती विद्या	71
57.	देवकी का मातृत्व	72
58.	माँ की ममता	73
59.	भीष्म प्रतिज्ञा	73
60.	आज्ञाकारी पुत्र : श्री राम	74
61.	ढाई अक्षर का 'यत्न'	75
62.	तमिलनाडू का जैन इतिहास	76
63.	जल एक - रूप अनेक	78
64.	बोओगे सो काटोगे	78
65.	बिना विचारे जो करे	79
66.	होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं	80
67.	शेर का कांटा	81
68.	रायचन्द्र की तीन बातें	82
69.	अपेक्षा लगाना जरूरी	82
70.	संवेदनशील बनें	83
71.	परिस्थिति प्रतिकूल - व्याख्या अनुकूल	84
72.	विचारों में हिंसा का प्रभाव	85
73.	ऐसे खिलौनो से बचायें बच्चों को	85
74.	जैसी दृष्टि-वैसी सृष्टि	86
75.	चक्कर निन्यानवे का	87
76.	धर्म का कुल्ला	88
77.	हम पढ़े लिखे अधिक, कम समझदार	89
78.	स्वाभिमान जगायें	90
79.	अमर फल	91
80.	अटल श्रद्धान करे कल्याण	92
81.	एक वाक्य ने बदला जीवन	94
82.	आयेगा सो जायेगा	95

83.	करें मान का मर्दन	96
84.	माँ का साथ	96
85.	खाली हाथ है जाना	97
86.	मिथ्याचार का फल	98
87.	लोभ पर विजय	99
88.	मम्मन सेठ की कहानी	101
89.	माँ के संस्कार	103
90.	तन मिला तुम तप करो	104
91.	सत्याचरण ही भगवान् की पूजा	105
92.	मत भूलो संस्कार	106
93.	पारसमणि	107
94.	दानवीर सेठ झगडूशाह	108
95.	बुराई छोटी नहीं होती	109
96.	वासना को जीता वात्सल्य ने	110
97.	उद्देश्य रहित यात्रा, यात्रा नहीं भटकन	111
98.	छोड़ दो गलत ट्रेन को	112
99.	आदमी की दौड़	113
100.	णमोकार मंत्र की महिमा	115
101.	समझदार खरगोश	116
102.	समय की कीमत	117
103.	उत्तराधिकारी का चयन	118
104.	आओं करें बीजों की रक्षा	119
105.	जगाओ सोये शेर को	120
106.	पुनर्मूसको भव	121
107.	जो मिला वह कम नहीं	122
108.	बांसुरी और ढोलक	123

श्रद्धा लगाती पार

एक पण्डित जी थे। वे रोज प्रवचन किया करते थे। उनको एक ग्वालिन रोज दूध लाकर दिया करती थी। यह रोज का क्रम था। लड़की दूर गाँव से दूध लाती थी। बरसात का समय आया। रास्ते में एक नदी भी पड़ती थी। नदी में पूर हो जाने के कारण नाव से आना पड़ता था। कई बार नाविक लेट हो जाता तो ग्वालिन को आने में देरी हो जाती थी। जब वह ग्वालिन लड़की लेट हो जाती तो पण्डित जी को बड़ा ताव आता था क्योंकि बिना दूध पिये प्रवचन करने जाँय तो कैसे जाँय? पण्डित जी रोज उसे डाँटते, पर ग्वालिन सरल स्वभावी होने के कारण, रोज क्षमा माँग लेती थी और आगे से विलम्ब न होने का आश्वासन देकर चली जाती। एक दिन वह कुछ और ज्यादा लेट हो गयी। अब तो पण्डित जी इंतजार करते-करते प्रवचन करने चले गए। प्रवचन करते-करते पण्डित जी ने कहा-भगवान का नाम लेने से संसार सागर से भी पार उतरा जा सकता है। भगवान तो संसार से पार उतार देते हैं। उस ग्वालिन के मन में पण्डित जी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी। वह तो पण्डित जी को ही भगवान मानती थी। जैसे ही उसने सुना कि भगवान संसार सागर से पार उतार देगा, तो क्या मुझे नदी पार नहीं करा सकता है? अब मैं नाविक का इंतजार नहीं करूँगी और अब मैं रोज समय पर दूध लाकर दिया करूँगी।

प्रवचन के उपरान्त वहाँ से निकली तो रास्ते में नदी फिर पड़ी। उसने नदी के किनारे भगवान का नाम लिया और नदी पर ऐसे चलने लगी जैसे कोई सड़क पर दौड़ लगा रहा हो। इस पार से उस पार चली गई। अब रोज वह इस तरह आती और नदी के किनारे आकर के भगवान का नाम लेती और नदी पार कर जाती। अब पण्डित जी को रोज दूध समय पर मिलने लगा तो पण्डित जी ने उससे पूछा- क्या बात है, आजकल तो तुम बिलकुल समय पर आ जाती हो। क्या नाविक ठीक टाईम पर आने लगा या और कोई माध्यम से आती हो? तब लड़की ने मुस्कुराते हुए कहा- पण्डित जी आपने ही तो उपाय बताया था और अब हम नाविक के सहारे नहीं, अब तो हम आपके उपाय के सहारे आते हैं।

पण्डित जी ने कहा- मेरा कौन सा उपाय? तब लड़की ने कहा- उस रोज आपने प्रवचन में नहीं कहा था कि भगवान तो भवसागर से पार उतार देते हैं। भगवान बहुत अच्छे हैं। मैंने सोचा कि भगवान तो इतना दयालु है कि जब वह भवसागर से पार उतार सकता है तो क्या हमें नदिया के पार नहीं उतार सकता। अब तो मैं रोज नदी के किनारे जाती हूँ और भगवान् से कहती हूँ कि भगवान मुझे नदिया से पार लगा दो। भगवान मुझे पार लगा देते हैं। रोज ही मैं तो भगवान के सहारे आती हूँ। पण्डित जी ने जब इतना सुना तो आश्चर्य से पूछा-क्या! तू सच बोल रही है? लड़की ने कहा-बिल्कुल सच। यद्यपि पण्डित जी ने अपनी जुबान से कहा था कि भगवान भवसागर से पार उतारता है लेकिन उसके दिल के कोने में अभी भी कहीं अविश्वास जमा था। वह पूछ रहा है कि क्या सच में भगवान पार उतार देता है। पण्डित जी ने कहा-चलो, हमें दिखाओगी। तो ग्वालिन लड़की ने कहा-हाँ, चलो हम दिखाते हैं। जैसे भगवान हमें रोज पार लगाते हैं, वैसे ही आपको भी पार लगा देंगे और आपको तो हमसे भी पहले पार लगायेंगे क्योंकि आप तो इतने बड़े ज्ञानी हो।

दोनों चलकर नदी के किनारे पहुँचे तो ग्वालिन लड़की ने तो बेहिचक नदी में पाँव रख दिया। भगवान का नाम लिया और नदी में चलने लगी और पण्डित जी से कहा कि पण्डित जी आप भी आओ। पण्डित जी तो बिल्कुल अचम्भित थे। वह देख रहे थे कि यह तो पानी में चल रही है लेकिन मैं कैसे जाऊँ। अरे पानी बहुत गहरा है, कहीं डूब गया तो? लड़की ने कहा-आओ देखो, पण्डित जी, भगवान हमें कैसे पार लगा रहा है। आप भी भगवान का नाम लो और आगे बढ़ो। ग्वालिन के आग्रह से पण्डित जी ने बड़े संकोचवश अपनी धोती की अचकन को ऊपर उठाया और पानी में पाँव दिया। पाँव दिया ही था कि धम्म से डूब गये। अब पण्डित जी को समझ में आया कि सच में मैं कहने को पण्डित जरूर हूँ पर तुमसे बहुत पीछे हूँ। वहाँ भगवान ने पार नहीं उतारा, पार उतारने वाला यदि कोई था तो वह श्रद्धा थी।

सत्य से मत भागो

एक राजा को किसी ने बता दिया कि आठ दिन बाद तुम्हारी मृत्यु होगी। यमदूत तुम्हारे पास आयेंगे और तुम्हें ले जायेंगे। ऐसा कोई यमदूत नहीं है, यह केवल लोकख्याति है। जन्म-मरण तो आयु के संयोग-वियोग पर निर्भर है। पर कहानी है और हमें इससे शिक्षा लेनी है तो देखे क्या कहती है कहानी। यमदूत आयेगा और तुम्हें ले जायेगा। तुम जहाँ जाना चाहो, जहाँ छुप सकते हो छुपो। अब क्या करें? राजा ने बहुत दिमाग लगाया। उसने सोचा मेरे पास एक बहुत तेज दौड़ने वाला घोड़ा है। एक पल में आसमान से बातें करने लगता है। क्यों न मैं इस घोड़े पर सवार होकर इस दुनिया से बहुत दूर चला जाऊँ। ऐसी जगह चला जाऊँ जहाँ मौत की भी पहुँच न हो। वह घोड़े पर सवार होकर काफी दूर निकल गया। उसे ऐसा लगा कि ऐसी जगह आ गया हूँ जहाँ मौत नहीं पहुँच सकती। काफी लम्बी यात्रा कर लेने के कारण वह थक गया था उसकी हालत भी पस्त हो गयी थी। कुछ विश्राम करने के भाव से उसने घोड़े को रोका, और उसे पेड़ से बाँध दिया। आराम करने की दृष्टि से या अपनी कमर सीधी करने की भावना से पीछे की तरफ मुड़ा ही था कि किसी ने उसके बाल पकड़ लिये। मुड़ करके देखा और बोला कौन है? वह बोली मौत हूँ। राजा ने कहा कि यहाँ क्यों आयी हो- मैं तुम्हें लेने के लिये ही जा रही थी, अच्छा ही हुआ तुम खुद चलकर यहाँ आ गये। हमें आगे जाने की जरूरत नहीं पड़ी। अब तुम्हारा वक्त आ गया है। अब मेरे साथ चलो।

निष्कर्ष- मृत्यु एक सच है उससे ड़रकर भागो मत।

**अशुभ समय
जितनी देर के लिये टले
उतना ही शुभ है।**

मत उलझो रूप में

कंस को पता पड़ा कि हमारा हन्ता नन्दगाँव में एक शिशु के रूप में पल रहा है। उस स्थिति को जानकर कंस चिन्तातुर हो गया। उसके दरबार में पूतना थी। पूतना को मालूम पड़ा। पूतना ने कहा- आप चिन्ता मत करिये। यह मेरे बॉये हाथ का खेल है। मैं खेल-खेल में ही सारा काम कर लूँगी। आपको इसकी चिन्ता की जरूरत नहीं है। आपका हन्ता क्या, नन्दगाँव में अब एक भी शिशु जीवित नहीं बचेगा। कहते हैं कि उस पूतना ने बड़ा मोहक रूप धारण किया। जब मोहक रूप धारण करके वह नन्दगाँव गई तो गाँव के सारे बच्चे उसकी गोद में खेलने के लिये मचल पड़े। सब कोई उसके आँचल में छुपने के लिए उमड़ पड़े। हर बच्चा उसका दुग्धपान करने के लिये इकदम से उमड़ पड़ा। लेकिन परिणाम क्या हुआ? जो भी बच्चा उसके आँचल में खेला, जिस बच्चे ने उसका दूध पिया वे सब काल-कवलित हो गये। उन्हें अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। लेकिन जब बारी श्रीकृष्ण की आयी तो श्रीकृष्ण ने उस पूतना का ही काम तमाम कर दिया। हमेशा के लिये अपने रास्ते से निकाल दिया क्योंकि श्रीकृष्ण जानते थे कि एक बच्चे के लिए जो माँ के आँचल में सुरक्षा है वह संसार में कहीं भी नहीं है। मेरे लिये मात्र माँ का आँचल ही शरण है, इसके अलावा कोई शरण नहीं है। इसलिये पूतना को मार्ग से अलग कर दिया।

निष्कर्ष- हमें किसी भी पूतना के छलावे में नहीं आना है।

धीरज कमजोर की ताकत
और
अधीरता ताकतवर की कमजोरी।

''एकाउण्टेन्ट बनें- मालिक नहीं''

एक नगर सेठ किसी सन्त के पास तत्त्वोपदेश के लिये पहुँचा। सन्त बहुत पहुँचे हुये थे। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हें क्या उपदेश दूँ? इस नगर के सेठ हैं, शान्तिस्वरूप, तुम उनके पास जाओ, तुम्हें अच्छा तत्त्वोपदेश मिल जायेगा। वह शान्तिस्वरूप जी के यहाँ गया और अपना परिचय दिया। देखता क्या है कि बहुत बड़ा कारोबार है, सैंकड़ों मुनीम काम कर रहे हैं और सेठ जी अपने काम में लगे हुये हैं। उसने जैसे ही परिचय दिया सेठ जी ने उनका स्वागत किया और अपने हेड मुनीम को बुलाकर कहा कि मुनीम साहब आज से ये हमारे मेहमान हैं। जब तक ये यहाँ रहें, इनकी पूर्ण व्यवस्था आपको करना है। किसी भी चीज की कमी न पड़े और सेठ जी अपने काम में लग गये। उस व्यक्ति ने सोचा कि अपना काम करने के बाद कोई शास्त्र प्रवचन इनके यहाँ होता होगा, तो मुझे कुछ उपदेश मिलेगा। शाम होने के बाद भी सेठ जी अपनी नियमित चर्या में व्यस्त रहे। कोई धर्मोपदेश नहीं। पूरा दिन, पूरी रात बीत गई। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, व्यतीत हो गये पर सेठ जी तो नोट छापने में ऐसे व्यस्त थे कि कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था। उसे लगा कि यहाँ तो मेरा समय बर्बाद हो रहा हैं। आज तो मुझे वापस चले जाना चाहिये। मन बनाकर बैठा ही था कि अचानक सेठ जी के पास उनका हेड मुनीम आ गया और घबड़ाते हुये सेठ जी से बोला कि सेठ साहब बड़ा अनर्थ हो गया। तब सेठ जी ने कहा क्या हो गया? इतने अधीर क्यों हो रहे हो बताओ तो सही। तब मुनीम ने कहा -अभी अभी समाचार आया हैकि अपना एक जहाज समुद्रमार्ग से आने वाला था लेकिन समुद्री तूफान आने से वह जहाज डूब गया । उसमें दस करोड़ का माल था। सबका सब माल डूब गया। सेठ जी ने सुना तो कोई फर्क नहीं पड़ा। चेहरे पर हल्की सी शिकन भी नहीं आई जैसे कुछ हुआ ही नहीं। दस रूपया भी नहीं गया हो, दस करोड़ की बात तो दूर। बोले-ठीक हैं ऐसा होता हैं विधाता की मर्जी है। जाओं अपना काम करों। अबकी बार उस व्यक्ति को लगा कि जरूर इस सेठ में कुछ विलक्षणता है। दस करोड़ का नुकसान हुआ और यह आदमी ऐसे कह रहा हैं

कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं कुछ समय रुकना चाहिए और रुक गया ।

तीन दिन बाद वही मुनीम फिर से आया और अबकी बार उसके चेहरे पर अभूतपूर्व चमक थी। फूला नहीं समा रहा था । प्रफुल्लित मन से आया और कहा- सेठ जी, मैं महान भाग्यशाली हूँ। आप जैसे पुण्यात्मा की सेवा करने का सौभाग्य मिल रहा हैं। आप जैसे पुण्यात्माओं के ऊपर आखिर आपत्ति-विपत्ति आ कैसे सकती है? आप धन्य हो और आपकी सेवा करके में भी कृतार्थ हूँ। सेठ जी कहा -भूमिका मत बनाओं, सीधे-सीधे बात बताओं कि आखिर क्या बात हैं? वह बोला - क्या बताऊँ, सेठ जी बड़ी प्रसन्नता हो रही हैं मुझे आज, उस दिन जो मैंने आपको दुःखद समाचार दिया था, तभी मेरी जीभ क्यों न कट गयी। तब सेठ जी ने कहा कि आखिर हुआ क्या है? तब उस मुनीम ने कहा - तकनीकी खामी की वजह से अपना जहाज दो दिन बाद निकला था और वह आज बन्दरगाह पर सकुशल पहुँच गया । अपना माल पूर्णतः सुरक्षित हैं और बाजार में तेजी आने के कारण अपने को पंद्रह करोड़ का अधिक लाभ हुआ हैं। सेठ जी ने सुना तो अब की बार भी कोई खास प्रतिक्रिया नहीं दी। बस इतना ही कहा कि ठीक है, ऐसा होता है, सब विधाता की मर्जी है। जाओ अपना काम करो। अब की बार उस व्यक्ति से रहा नहीं गया। उस आगन्तुक ने कहा- धन्य हो सेठ जी, मैं क्या देख रहा हूँ? उस दिन दस करोड़ के नुकसान का समाचार आया तब भी आपको फर्क नहीं पड़ा और आज पन्द्रह करोड़ के फायदे का समाचार आया तब भी आपको फर्क नहीं पड़ा। अरे कम से कम समाचार देने वाले की पीठ तो थपथपा देते। आपने तो उसको कुछ भी नहीं बोला। मामला क्या है? सेठ जी ने जो बात कही वह आप सबको ध्यान देने योग्य है। सेठ जी ने कहा- यह बताइये कि कोई व्यक्ति अपने बैंक के एकाउंट से रूपया निकाले और उसे दूसरी ब्राँच में जमा करे तो एकाउँटेन्ट को कोई तकलीफ होगी? बस यही है मेरे जीवन का रहस्य। आपको दिखाई पड़ता है कि यह कारोबार मेरा है। यही मानकर आप चल रहे हैं कि इस कारोबार का मालिक मैं हूँ, पर यह आपका भ्रम है। मैं कभी भी अपने को इसका मालिक नहीं मानता हूँ। हकीकत में इसका मालिक नहीं हूँ। मैं तो केवल एकाउँटेन्ट हूँ। मालिक तो विधाता है

वह जो चाहता है वही मैं कर रहा हूँ। कभी वह इस ब्राँच में रखता है तो कभी वह उस ब्राँच में रखता है। जब वह इस ब्राँच में रखता है तो जमा कर देता हूँ और जब उस ब्राँच में करता है तो नाम कर लेता हूँ। लाभ होता है तो जमा की ब्राँच में डाल देता हूँ और हानि होती है तो नाम चढ़ा लेता हूँ। मैं क्यों रोऊ? जाने तो मालिक जाने। मैं तो एक एकाउँटेंट हूँ। इसीलिये एकाउँटेंट बने रहिये, मालिक बनने की कोशिश मत कीजिये। एकाउँटेंट का काम है पूरी जिम्मेदारी से काम करे और पूर्ण ड्यूटी करे। शेष सब विधाता की मर्जी है। कर्मों का खेल है। कर्म चाहेगा तो लाभ होगा और नहीं चाहेगा तो हानि होती है। जब ऐसी दृष्टि आपकी बन जायेगी तो लाभ और अलाभ में, संयोग और वियोग में, प्रशंसा और निन्दा में आपकी समता बनी रहेगी।

स्वयं के कष्टों के प्रति सहनशील बने,
दूसरों के कष्टों के प्रति संवेदनशील बने,
सबके प्रति स्नेहशील बने,
जीवन संस्कारशील बने।

सच्ची पूजा : सच्ची भक्ति

पण्डित टोडरमल जी के विषय में मैंने पढ़ा कि उनके निर्देशन में एक बार जयपुर में सिद्धचक्र विधान हो रहा था। उस विधान के मुख्य विधानाचार्य वही थे। वे अपने घर से शुद्ध धवल, वस्त्र पहिनकर निकल रहे थे। रास्ते में देखते हैं कि एक वृद्धा कीचड़ में फिसलकर गिर पड़ी है और कराह रही है। पण्डित जी को बात समझते देर नहीं लगी। अपने शुद्ध और धवल वस्त्रों की परवाह किये बिना वे सीधे उस बुढ़िया के पास गये और उससे पूँछा। बुढ़िया ने कहा- बेटा गिर गई हूँ, उठा नहीं जाता, हड्डी टूट गई है। पण्डित जी ने अन्य बातों की परवाह किये बिना उस वृद्धा को उठाया, गोद में लिया और चिकित्सक के पास ले गये। इसमें डेढ़ घण्टे का विलम्ब हो गया। डेढ घण्टे के विलम्ब के साथ जब पण्डित जी विधान में पहुँचे तो लोग उनकी प्रतीक्षा करते-करते थक गये थे और अब लोगों की आतुरता आक्रोश में परिवर्तित हो गई थी। सबने एक साथ पण्डित जी को उलाहना दिया- पण्डित जी आज तो आपने बहुत विलम्ब कर दिया। आज तो हमारा सारा पाठ अधूरा रह गया। पण्डित जी मुस्कुराये और उन्होंने एकदम शान्त भाव से कहा कि सिद्धचक्र का सच्चा पाठ तो आज ही हुआ है। सब लोगों को आश्चर्य हुआ और कहा कि पाठ तो शुरू ही नहीं हुआ है और आप कह रहे हैं कि सच्चा पाठ तो आज ही हुआ है। तब पण्डितजी ने रास्ते में घटित सारी घटना का ब्यौरा सुनाते हुये कहा कि ध्यान रखो, भगवान की पूजा करना जितना जरूरी था उससे ज्यादा जरूरी उस वृद्धा की सेवा करना भी था। हम भगवान में निःस्पृहता की पूजा करते हैं। वह तो मन्दिर के देवता की पूजा है, लेकिन हमें घट-घट में विराजित जीते-जागते सिद्धात्मा की पूजा से भी पीछे नहीं हटना चाहिये।

**एहसान लेकर मानो
देकर नहीं।**

दृष्टि चर्म पर नहीं, मर्म पर हो

राजा जनक के दरबार में एक बार अष्टावक्र पहुँचे। अष्टावक्र एक बहुत ही पहुँचे हुये वेदान्त के ज्ञाता और आध्यात्मिक व्यक्ति थे। राजा जनक उनको अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे। वे उनकी सभा में नियमित उपदेश देते थे। जनक ने एक बार अपने इलाके के सभी तत्त्वज्ञ पण्डितों की सभा बुलाई और उसमें अष्टावक्र का विशेष उद्‌बोधन रखा। उनका शरीर आठ जगह से टेढा होने के कारण चलना भी अजीबो-गरीब होता था। दरबार में जब अष्टाव्रक आने लगे तो उनकी इस प्रकार की चाल को देखकर सभी विद्वान हँस पड़े। हँसी में सम्मान नहीं, बल्कि व्यंग था। अष्टावक्र ने देखा तो वे उल्टे पाँव लौटने लगे। जैसे ही लौटना शुरू किया तो जनक ने कहा कि प्रभु आप कैसे लौट रहे हैं? आप आईये। आज तो आपकी सभा है, पण्डितों की सभा में आपको सम्बोधन देना है। अष्टावक्र ने अत्यन्त दृढ़ता से कहा कि- मैं तो पण्डितों की सभा जानकर ही अपना तत्त्वोपदेश देने आया था। पर यह तो चमारों की सभा है और मैं चमारों के सामने नहीं बोलता। मैं पण्डितों के सामने बोलता हूँ। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये पण्डित लोग आये हुये हैं, और आप इन्हें चमार क्यों कह रहे हैं? अष्टावक्र ने कहा- राजन्! ये जितने लोग बैठे हैं, यह सब चमार हैं। ये पण्डित हो ही नहीं सकते। ये तत्त्वज्ञ तो हो ही नहीं सकते क्योंकि इनकी दृष्टि मेरे इस चर्म पर है और जिसकी दृष्टि चर्म पर है, वह चमार ही है। जिसकी दृष्टि मर्म पर होती है वह पण्डित होता है। मर्म दृष्टा बनें, चर्म दृष्टा नहीं।

सही सोचें-सुन्दर सोचें।
सही देखें-सुन्दर देखें।
सही बोलें-सुन्दर बोलें।
सही करें-सुन्दर करें।

क्रिया की प्रतिक्रिया

एक आठ साल का बच्चा अपनी माँ से किसी कारण से नाराज हो गया और नाराज होकर वह सीधे जंगल की ओर भाग गया। घर के पास ही जंगल था। जंगल पहुँचा और जंगल में जाकर के जोर-जोर से कहना शुरू कर दिया- 'मम्मी आई हेट यू, मम्मी आई हेट यू'। जंगल घना, वीरान और सुनसान था। जैसे ही बच्चे ने कहना शुरू किया- मम्मी मैं तुमसे घृणा करता हूँ, मैं तुमसे घृणा करता हूँ। तो आवाज पूरे जंगल में प्रतिध्वनित हुई और कई गुनी बनकर लौट आई। जब यह बात उसके कान में आई तो वह लड़का बहुत घबड़ा गया कि अरे! यह क्या, मैने मम्मी को हेट किया और जंगल के सारे बच्चे मुझसे नफरत करने लगे। वह फौरन उल्टे पैर लौटकर माँ के पास आया और माँ से क्षमा माँगने लगा कि माँ मुझे क्षमा कर दो। मैंने आपसे नफरत की तो जंगल के सारे बच्चे मुझसे नफरत करने लगे। माँ समझ गई और बेटे से कहा- जो तूने मम्मी से हेट किया तो सब तुझसे हेट करने लगे। अब जा और कहना कि मम्मी आई लव यू, सब तुझसे प्यार करने लगेंगे। वह बच्चा गया और जंगल में कहना शुरू किया, मम्मी आई लव यू, मम्मी आई लव यू, तो चारों ओर से आवाज आई लव यू, आई लव यू। वह रोमांचित हो उठा और कहा कि मैंने मम्मी से प्रेम किया और सब मुझसे प्रेम करने लगे। माँ से घृणा किया, तो सब मुझसे घृणा करने लगे। सारा जगत् तुम्हारी ही प्रतिध्वनि है। प्रेम करोगे तो प्रेम मिलेगा। घृणा करोगे तो घृणा मिलेगी। क्या करना है तय तुम्हें ही करना है।

ऐशोआराम व्यक्ति को निष्क्रिय बना देता है।

परिवर्तन भीतर से हो

पाण्डवों को जब विजय प्राप्त हुई तो वे सब लोग तीर्थयात्रा के लिये निकले। श्रीकृष्ण को भी अपने साथ यात्रा में शामिल करना चाहते थे। श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं व्यस्त हूँ। मैं नहीं जा सकता हूँ। फिर भी जब, आप बहुत आग्रह कर रहे हैं तो एक काम करो मैं अपने प्रतिनिधि के रूप में तुम्हें एक तूमड़ी देता हूँ, इसे मेरी जगह यात्रा करा देना। वे उस तूमड़ी को ले गये। चारों धाम की यात्रा की। पाण्डव एक बार डुबकी लगाते तो उसे चार डुबकी लगवाते। जब सब लोग यात्रा करके लौटे तो श्रीकृष्ण ने उनके सम्मान में एक भोज दिया। भोज में सब बैठे। उन्होंने पाण्डवों से पूछा- हमारे प्रतिनिधि को यात्रा करा दी? जबाव पाया- हाँ करा दी है। तब श्रीकृष्ण ने उस तुम्बी को माँगा। श्रीकृष्ण ने कहा- यह तो पवित्र हो गई होगी? पाण्डवों ने कहा- हाँ यह तो परम पवित्र हो गई है। अब सब जैसे ही भोजन के लिये बैठे तो सबको खीर परोसी गई। सब खीर खाने लगे और जैसे ही मुँह में खीर डाली तो सभी थू-थू करने लगे। यह क्या हो या? श्रीकृष्ण ने कहा- क्या कर रहे हो तुम लोग, क्यों थू-थू कर रहे हो? बोले- यह खीर हे कि जहर? श्रीकृष्ण ने कहा-गड़बड़ मत करो, खीर खाओ। पाण्डवों ने कहा- प्रभु, यदि इसको खायेंगें तो मर जायेंगे। तब श्रीकृष्ण ने कहा- तुम लोगों को बहुत पाप लगेगा। मालूम है तुम्हें किसकी खीर दी गई है? पाण्डवों ने प्रश्न किया- प्रभु, किसकी खीर है? तब श्रीकृष्ण ने कहा- वही मेरे प्रतिनिधि की, जिसे चारों धाम में अभी पवित्र करके लाये हो। उसी तुम्बी की खीर बनी है। पाण्डव बोले- प्रभु, यह खीर चाहे जिसकी बनी हो, लेकिन इतनी कड़वी है कि खायेंगे तो जिन्दा रहना मुश्किल होगा। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया-सुनो, अपनी धारणा को परिवर्तित कर दो। बाहर की गंगा में स्नान करने से ही पवित्रता नहीं आती है। पवित्रता तो भीतर की गंगा में स्नान करने से आती है।

हार में जीत

बाबा भारती के पास एक प्राणप्रिय घोड़ा था सुल्तान। बाबा भारती उसे दिल से चाहते थे या यूँ कहें कि उनकी आत्मा ही उसमें बसी हुई थी। उस घोड़े पर डाकू खड्गसिंह की नजर गड़ गयी। खड्गसिंह ने बाबा भारती से वह घोड़ा खरीदना चाहा। मुँह माँगी कीमत देने की बात की लेकिन बाबा भारती ने कह दिया कि इस घोड़े को मैं किसी भी कीमत पर नहीं दे सकता। यह घोड़ा मेरा प्राण- प्यारा घोड़ा है। पर खड्गसिंह को तो वह घोड़ा पसन्द आ चुका था। डाकुओं को कोई चीज पसन्द आ जाये और वह उन तक न पहुँचे यह संभव ही नहीं है। एक दिन बाबा भारती अपने घोड़े पर सवार होकर चले जा रहे थे कि रास्ते में एक कराहता हुआ वृद्ध दिखाई पड़ा। उस अपाहिज वृद्ध ने उनसे कुछ सहायता की माँग की। बाबा भारती का हृदय दया से द्रवीभूत हो गया। उन्होनें कहा- ठीक है एक काम करो, तुम घोड़े पर बैठ जाओ, मैं घोड़े की लगाम पकड़क धीरे-धीरे चलूँगा। उस अपाहिज को बाबा भारती ने घोड़े पर सवार कर दिया और खुद पैदल चलने लगे, पर थोड़ी ही देर में उनके हाथ को झटका-सा लगा और लगाम हाथ से छूट गई। घोड़ा हवा में बातें करने लगा था। देखो जो अपाहिज था वह अपाहिज नहीं डाकू खड्गसिंह था। बाबा भारती एकदम ठगे से रह गये। अरे यह क्या? खड्गसिंह ने बाबा भारती की ओर मुड़कर कहा कि देखो मैं खड्गसिंह हूँ मैंने तुमसे घोड़ा माँगा था। तुमने नहीं दिया। अब यह घोड़ा मेरा हो गया। अब मैं तुम्हें यह किसी भी हाल में नहीं लौटाऊँगा। बाबा भारती कुछ पल मौन रहे फिर उसी मुद्रा में बाबा भारती ने कहा- सुनो, खड्गसिंह सुनो, तुम घोड़ा लेजाते हो तो ले जाओ, पर मेरी एक बात सुनो। खड्गसिंह ने पूछा- क्या है? बाबा भारती ने कहा कि इस घटना का जिक्र तुम किसी ने नहीं करना। खड्गसिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ कि क्या बात है? इस घटना का जिक्र किसी से नहीं करने की बात क्यों कह रहे हैं? बाबा भारती ने कहा- यदि तुमने इस घटना का जिक्र किसी से किया तो लोगों का अपाहिजों, गरीबों और जरूरतमन्दों पर से विश्वास उठ जायेगा इसलिये तुम ऐसा मत करना।

खड्गसिंह घोड़े को तो ले गया लेकिन इस प्रसंग ने उसके चित्त को पूरी तरह मोड़ दिया। उसे लगा कि सच में यह तो देवता है। इतना महान् व्यक्ति? इस व्यक्ति के घोड़े को ले करके मैं क्या करूँगा? मुझे तो घोड़ा कोई भी मिल जायेगा। मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है। उसकी आत्मा उसे अन्दर से कचोटने लगी। परिणाम यह निकला कि बाबा भारती जहाँ घोड़े के विरह की पीड़ा को सहते हुए रात्रि में करवटें बदल रहे थे, वहाँ सुल्तान को पाकर भी खड्गसिंह के अन्दर बेचैनी थी। उसका हृदय उथल-पुथल कर रहा था। इसी उथल-पुथल से प्रेरित होकर वह उसी रात घोड़े को बाबा भारती के दरवाजे पर बाँधकर चला गया।

किसी के सिर पर बैठने की कोशिश मत करो, अपितु ऐसा आचरण करो कि दुनिया तुमको सिर पर बैठाने के लिए लालायित हो।

मिलें दूध में पानी जैसे

एक बार पानी दूध के पास गया और दूध से कहा- तुम्हारा बड़ा मूल्य है, महत्त्व है। तुममें पौष्टिकता है, इसलिये लोग तुम्हें बड़ा मान देते हैं। मैं तो मूल्यहीन हूँ, मेरा तो कोई मूल्य नहीं है। पर मैं स्थान चाहता हूँ। क्या आप मुझे अपने में स्थान दे देंगे? दूध ने कहा- भाई, शरणागत की रक्षा करना तो अपना धर्म है और कोई आता है तो उसका स्वागत करना हमारा कर्तव्य है। दूध ने बड़े प्रेम से पानी को आमन्त्रित किया और अपने में मिला लिया। दूध ने जब पानी को अपने में मिलाया तो पानी भी दूध में घुलमिल गया। दूध पानी एक हो गये। अब जब दूध और पानी मिलकर एक हो गये और थोड़ी देर के बाद हलवाई दूध को तपाने लगा तो पानी के मन में आया अरे, जिसने मुझे शरण दी है, मेरे कारण वह संकट में पड़े ऐसा तो मैं नहीं होने दूँगा इसलिये मैं पहले अपना उत्सर्ग करूँगा। मैं पहले जलूँगा। पानी ने जलना शुरू कर दिया।

जैसे ही पानी ने जलना शुरू किया तो दूध को बड़ा खराब लगा। अरे, शरणागत की रक्षा करना तो हमारा कर्तव्य है, धर्म है। जिसे शरण दी वह मेरे जीते जी संकट में पड़े यह तो कतई संभव नहीं है। यह आग पानी को जला ही नहीं सकती है, मैं अभी आग को ही बुझा डालता हूँ। यह सोच करके दूध एकदम उबल पड़ा। दूध में उफान आ गया कि मैं आज इस आग को बुझा करके रहूँगा। जैसे ही दूध में उबाल आया और हलवाई की दृष्टि उस पर पड़ी, उसने एक चुल्लू पानी उसमें डाल दिया। दूध ने देखा- मेरा साथी आ गया और वह शान्त हो गया। एक दिन पानी तेल के पास पहुँचा। तेल के समक्ष जाकर पानी ने निवेदन किया कि भैया तुम्हारा बड़ा मूल्य है, महत्त्व है। लोग बड़ी ऊँची कीमत चुकाकर तुम्हें खरीदते हैं। थोड़ा सा मुझे स्थान दे दो, तुम्हारा क्या बिगड़ेगा? तेल ने बहुत रौब झाड़ते हुये कहा- तुम्हारी क्या औकात कि तुम मेरे साथ रहो। तुम अपना काम करो, मैं अपना काम करूँगा। फिर भी पानी ने कहा- भैया, थोड़ा स्थान दे दो , यदि कृपा कर दोगे तो आपका क्या बिगड़ेगा? तेल ने तिरस्कार भरी दृष्टि से पानी से कहा- ठीक है, आना है तो आ जाओ।

जब पानी तेल में आया तो तेल ऐंठकर उसके सिर पर बैठ गया। अब क्या था? जब तेल पानी के सिर पर बैठा तो पानी को बुरा तो लगा पर वह चुप रहा, लेकिन जब दिया जलाया गया तो तेल पहले जला पानी का कुछ भी नहीं बिगड़ा। जो व्यक्ति दूध और पानी की तरह एकमेक हो जाते हैं उनका अस्तित्व सदैव बरकरार रहता है। पर जो पानी एवं तेल की तरह ऐंठते हैं, उनका जीवन यूँ ही नष्ट-भ्रष्ट होता है।

पुण्य का प्रत्यक्ष फल संतुष्टि है और
पारंपरिक फल समृद्धि है,
जबकि पाप का प्रत्यक्ष फल संताप है और
पारंपरिक फल दुःख -दारिद्र।

कैसे कटी नाक सूर्पनखा की?

सूर्पनखा का पुत्र शम्बूक कुमार जब बाँस के बीड़े में छिपकर चन्द्रहास खड्ग सिद्ध कर रहा था, संयोगवश लक्ष्मण उधर से निकले, उसी समय तलवार प्रकट हुई। शम्बूककुमार को पता नहीं लगा। लक्ष्मण ने सहज रूप से तलवार का आह्वान किया। तलवार लक्ष्मण जी के हाथ में आ गयी। तलवार की परीक्षा तो उसकी धार से होती है तो मात्र उसके परीक्षण के लिये लक्ष्मण ने उस बीड़े में प्रहार किया। एक ही प्रहार में बीड़ा कट गया और बीड़े के भीतर उल्टे लटके शम्बूक कुमार का धड़ भी अलग हो गया। लक्ष्मण एकदम सकपका गये कि यह क्या अनर्थ हो गया। बिना चाहे आखिर यह कैसे हो गया? लेकिन क्या किया जा सकता था। कुछ किया नहीं जा सकता था। अंजाने में एक की हत्या हो गई। निराश मन से लक्ष्मण आये और श्री राम को सारी कहानी सुना दी। इधर सूर्पनखा प्रतिदिन की तरह अपने पुत्र को भोजन देने के लिये पहुँची तो बेटे को मरा देख विलाप करने लगी। इधर-उधर देखा कि आखिर कौन है मेरे बेटे का हत्यारा? लक्ष्मण जी के पदचिह्नों को देखते-देखते वह सीधे श्री राम की कुटिया की तरफ चली गई और जैसे ही श्रीराम का रूप देखा तो मुग्ध हो गई। भूल गई अपने बेटे का वियोग। जो अपने बेटे के हत्यारे की खोज करने गई थी वह श्री राम को देखते ही अपने भीतर छुपे मातृत्व की हत्या कर बैठी और उसने श्रीराम से प्रणय निवेदन कर डाला। सारी लज्जा और मर्यादा को लाँघकर उसने श्रीराम को प्रणय का प्रस्ताव दे डाला। कहते हैं रामचन्द्र जी ने उसे लक्ष्मण की तरफ भेज दिया। लक्ष्मण जी को इतना गुस्सा आया कि उन्होंने उस मर्यादाहीन सूर्पनखा की नाक काट दी। ऐसा कहते हैं। पर यह सही नहीं कि लक्ष्मण जी ने सूर्पनखा की नाक काटी होगी क्योंकि कोई भी क्षत्रिय किसी भी निशस्त्र और स्त्री पर अपने अस्त्र का प्रयोग नहीं करता है। लक्ष्मण जी ने सूर्पनखा की नाक नहीं काटी फिर भी उसकी बात नहीं मानने से नाक कट गयी। इसका मतलब जानते हो क्या? सूर्पनखा की नाक काटने का मतलब केवल इतना है कि कोई स्त्री सारी मर्यादा और लज्जा का परित्याग करके पर-पुरुष के पास जाकर सामीप्य का निवेदन करे और वहाँ से ठुकरा दी जाये इससे बड़ी नाक उसकी क्या कटेगी?

प्रेम के आगे हारी हिंसा

एक बार ऐसा हुआ कि गाय शेर की गिरफ्त में आ गई। शेर ने गाय को खाना चाहा। गाय ने बड़ी विनय पूर्वक शेर से निवेदन किया- आप मुझे खाना चाहते हैं, तो खा लें पर मैं आपसे थोड़ी-सी मुहलत चाहती हूँ। मेरा दूध पीता छोटा-सा बछड़ा है। साँझ ढलने को है, मेरी राह देख रहा होगा। मैं उससे कहकर आई हूँ कि जल्दी से जल्दी मैं आऊँगी और तुम्हें दूध पिलाऊँगी। वह मेरी राह देख रहा होगा। आप मेरा विश्वास करें। मैं अभी जाती हूँ और उसे दूध पिलाकर आती हूँ। शेर ऐसे विश्वास नहीं करता है, पर पता नहीं उसे क्या हुआ, शायद गाय कि निश्छलता ने उसके हृदय में विश्वास-सा भर दिया। शेर ने कहा- ठीक है, तुम जा रही हो तो अतिशीघ्र आ जाना। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

गाय गई और बछड़े से कहा- बेटे आ जल्दी दूध पी ले। बछड़े ने माँ के चेहरे को देखा तो उस पर बहुत ज्यादा मायूसी और उदासी थी। बछड़े ने पूछा- माँ आज तुझे क्या हो गया? आज तुम्हारे चेहरे पर वह प्रसन्नता नहीं है। आज तू इतनी हताश और उदास क्यों है माँ? गाय ने कहा- कुछ न पूँछो, बेटा। तुम बस जल्दी से दूध पीलो, मुझे जाना है। बछड़े ने कहा- कहाँ जाना है? माँ मैं दूध बाद में पीऊँगा, पहले आप अपनी उदासी का कारण बताओ। तेरा यह रोता हुआ चेहरा देखकरके मुझे दूध नहीं पीना है। मैं तो हँसते हुये रूप को देखना चाहता हूँ। जैसा तू मुझे रोज दूध पिलाते समय दिखती थी, वैसी आज नहीं दिख रही है। आज तो तू कोई दूसरी माँ हो गई है। आखिर बता मुझे क्या हो गया है और तुझे कहाँ जाना है? माँ ने बहुत टालना चाहा पर बछड़े ने कह दिया कि जब तक तू वास्तविकता नहीं बतायेगी मैं दूध नहीं पीऊँगा। बछड़े द्वारा दूध पीने में विलम्ब देख अन्ततः गाय को बताना ही पड़ा कि आज ऐसा-ऐसा वाकया हुआ है और मुझे शेर के पास जाकर अपना वचन पूरा करना है। बछड़े ने कहा- माँ यदि ऐसी बात है तो मैं भी चलता हूँ। जब तू ही नहीं रहेगी तो मैं रह करके क्या करूँगा। शेर प्रतीक्षा कर रहा था। देखा अरे, एक की जगह दो आ रहीं हैं।

गाय के साथ बछड़ा भी आ रहा है। गाय ने आते ही शेर से कहा कि मैंने अपना वायदा पूरा कर दिया आप जल्दी से मुझे खा लो। जैसे ही गाय आगे बढ़ी बछड़ा उछलकर आगे आ गया कि बेटे के रहते माँ के ह्रदय के टुकड़े-टुकड़े हों यह कैसे संभव है? पहले मुझे खाओ, फिर मेरी माँ को खाना। माँ ने कहा- मैं अपने सामने अपने ही कलेजे के टुकड़े होते देखूँ, यह संभव ही नहीं है। माँ अपने बच्चे का वध अपने सामने नहीं देख सकती इसलिये पहले आप मुझे खाओ फिर आप उसे खाना।

शेर गाय को खाने आये तो बछड़ा आगे आ जाये और शेर बछड़े को खाने आगे आये तो गाय आगे आ जाये। ऐसा ही चलता रहा। ऐसा दृश्य देखकर शेर का भी ह्रदय पसीज गया। इन दोनों में इतना प्रेम है? इनको खा करके गुनाह करना ठीक नहीं। शेर का ह्रदय बदला और उसने कहा- कि तुम दोनों के प्रेम ने मुझे पागल कर दिया है, जाओ मैं तुम दोनों को मुक्त करता हूँ। तुम दोनों स्वतंत्र हो। यह है प्रेम की ताकत, जो शेर जैसे क्रूर से क्रूर जानवर के अन्तःकरण को भी परिवर्तित करने की सामर्थ्य रखती है।

संसार शोकमय है,
जीवन योगमय है,
संबंध वियोगमय है,
काया रोगमय है,
सत्संग उपयोगमय है।

सबसे बड़ा आश्चर्य

जब कुन्ती को प्यास लगी तो पानी लेने के लिये पहले नकुल गये फिर सहदेव गये, फिर भीम गये, अर्जुन गये। बाद में युधिष्ठिर गये थे। यक्ष ने एक प्रश्न किया सबसे-किम् आश्चर्यम्? आश्चर्य क्या है? नकुल को कुछ भी समझ में नहीं आया। सहदेव को भी कुछ समझ में नहीं आया। भीम ने भी अपनी गदा घुमाई पर दिमाग में इसका जवाब नहीं आया। अर्जुन भी इसके उत्तर को साध नहीं सके। नतीजा सबके सब मूर्छित होकर वहीं पड़े रह गये। अन्त में युधिष्ठिर गये और युधिष्ठिर जब पानी भरने को आगे बढ़े तो यक्ष ने वही प्रश्न दुहराया और कहा तुम पानी बाद में लेना और तुमने यदि प्रश्न का सही जवाब दिया तो तुम्हारे भाई भी सही सलामत मिल जायेंगे। पूँछा कि आखिर तुम्हारा प्रश्न क्या है? तो पूँछा गया कि आश्चर्य क्या है? किम् आश्चर्यम्। तो युधिष्ठिर ने जो जवाब दिया वो मनन करने योग्य है। उन्होंने गहा-

अहन्यहनि भूतानि, गच्छन्ति यम् मन्दिरम्।
शेषाः जीवित मिच्छन्ति, किम् आश्चर्य मतः परम्॥

अरे प्रतिदिन सैकड़ों लोग मौत के मुँह में समाते हैं उसके बाद भी बाकी लोग जिन्दा रहने की आस रखते हैं इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा।

स्वयं के प्रति दूसरों के उपकारों को पत्थर की लकीर की तरह रखो।

सीधी जिंदगी जिओ

दो शब्द हैं। यदि मैं आपसे पूँछूँ कि अंग्रेजी में गॉड किसको कहते हैं? गॉड की स्पेलिंग है- जी ओ डी। यदि इसको उलट दें तो क्या होगा? डी ओ जी। गॉड का मतलब होता है भगवान् और डॉग का मतलब है कुत्ता। इसमें जीवन का बहुत बड़ा संदेश है- सीधी जिंदगी का नाम गॉड है और उल्टी जिंदगी का नाम डॉग है। हम सीधी जिंदगी जियें। जीवन के प्रति सही नजरिया अपनायें। साफ दृष्टिकोण हो तो हम अपने देवत्व की अभिव्यक्ति में समर्थ होंगे और यदि हमारा नजरिया उल्टा होगा तो हम अपने अन्दर देवत्व की प्रतिष्ठा करने में कभी भी सक्षम नहीं हो सकेंगे। यह तभी संभव है, जब दुनिया की और सारी चीजों से जीवन को महत्त्व दें।

दूसरों के प्रति स्वयं के उपकारों को पानी की लकीर की तरह रखो।

सारा खेल नजरिये का

एक संत किसी रास्ते से गुजर रहे थे। सड़क के किनारे मन्दिर निर्माण का कार्य चल रहा था। सैकड़ों मजदूर कार्य में लगे हुए थे। पता नहीं संत के मन में क्या भावना जगी कि रास्ते से एक ओर होकर पत्थर तोड़ते हुए मजदूर से पूँछा- भाई! क्या कर रहे हो? कड़वी निगाहों से घूरते हुए मजदूर ने कहा- दिखता नहीं, पत्थर तोड़ रहा हूँ। कुछ आगे बढ़कर संत ने पुनः एक अन्य मजदूर से पूछा- भाई! क्या कर रहे हो? मजदूर ने कहा- पेट पाल रहा हूँ। संत थोड़ा और आगे बढ़े और तीसरे मजदूर से पूछते हैं- भाई, क्या कर रहे हो? उसने प्रसन्नता से भरकर कहा- मन्दिर बना रहा हूँ।

क्रिया एक है, पर तीनों का दृष्टिकोण अलग-अलग है। एक पत्थर तोड़ रहा है, दूसरा पेट पाल रहा है और तीसरा मन्दिर बना रहा है। बन्धुओं, संसार में सब जीते हैं, जीने का तरीका और क्रिया ऊपरी तौर पर एक दिखाई देती है, पर हर व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग-अलग होता है, सबका नजरिया अलग-अलग होता है।

हमारा सारा जीवन हमारे नजरिये पर निर्भर करता है।

सिंह की तरह निर्भीक बनो,
पर उसकी तरह क्रूर नहीं।

सीखों भवतरणी विद्या

शिष्य गुरु के चरणों में वर्षों से साधनारत था। लगातार बारह वर्ष की कठिन साधना के फलस्वरूप आज उसे एक बड़ी सिद्धि मिली। उमंगों से भरकर वह गुरुचरणों में पहुँचा। गुरु से कहा- आपके आशीष् से हमारी साधना सिद्धि में परिणत हो गयी है। आपके परमाशीषों से मैंने जल तरणी विद्या सीख ली है। गुरु ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। शिष्य ने सोचा- शायद गुरु ने ठीक ढंग से सुना नहीं। अपनी बात को दुहराते हुए फिर से कहा- गुरुदेव! आशीर्वाद दें, आपकी कृपा से मैंने जलतरणी विद्या सीख ली है। अब की बार गुरु मुस्कुराकर रह गये। शिष्य बड़ा अचम्भित हुआ। उसने पुनः कहा- गुरुदेव! आशीर्वाद दीजिए, मैंने जलतरणी विद्या सीख ली है। बाहरवर्ष की साधना आज सार्थक हुई है। अब की बार गुरु ने अपना मौन तोड़ा और शिष्य को सम्बोधते हुए कहा- तुमने बारह वर्ष की साधना, दो पैसे में गवाँ दी। शिष्य को बड़ा आश्चर्य हुआ।

इतनी बड़ी सफलता, जिसके लिये बड़े-बड़े साधक भी तलाशते हैं। बारह वर्ष की कठोर तपस्या के परिणाम स्वरूप मैंने जिस सिद्धि को पाया। गुरु कह रहे हैं कि उसे तूने दो पैसे में गवाँ दिया। मतलब क्या? कहाँ तो अपेक्षा थी, गुरु पीठ ठोकेंगे, शाबाशी देंगे और यहाँ तो उल्टा ही हो रहा है।

शिष्य को कुछ समझ में नहीं आया। शिष्य के मनोभावों को समझकर गुरु ने कहा- तूने जलतरणी विद्या सीखकर कौन-सी उपलब्धि कर ली? जलतरणी विद्या सीखने से तुझे क्या मिला? नाविक को दो पैसा देता तो वह पार करा देता। तूने केवल दो पैसे बचाने के चक्कर में बारह वर्ष की साधना लगा दी। अरे, वही ताकत तूने भवतरणी विद्या के लिये लगायी होती तो तेरा उद्धार हो चुका होता।

क्रोध का परिणाम - मुनि बना सर्प

एक गुरु-शिष्य चले जा रहे थे। अचानक गुरु के पाँवों के नीचे एक मेंढ़क आ गया। यद्यपि वह मेंढक मरा हुआ था। गुरु ने ध्यान नहीं दिया और पैर के नीचे वह आ गया। शिष्य बहुत समझदार था, उसने गुरु का ध्यान इस ओर खींचा। उसने कहा- गुरुदेव, आपके पैर के नीचे एक मेंढक आ गया है। आपको प्रायश्चित्त करना चाहिए। गुरु बोले- तुम्हें क्या चिन्ता? शिष्य ने सोचा बाद में बता दूँगा। शाम को जब प्रतिक्रमण का समय आया तो शिष्य ने पुनः कहा- गुरुदेव, अपने को देखकर चलना चाहिए। एक बहुत बड़ी विराधना हो गयी। आपके पैर के नीचे मेंढक आ गया, आपको प्रायश्चित्त लेना चाहिए। गुरु ने अनसुना कर दिया। शिष्य ने सोचा शायद गुरु ने सुना नहीं। इसलिये उसने जोर से कहा- गुरुदेव, आपको प्रायश्चित्त करना चाहिए, आपके पैर के नीचे मेंढक आ गया था।

अब गुरु एकदम आग-बबूला हो गये। बोले- प्रायश्चित्त लेना तू मुझे सिखायेगा। अभी बताता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए। इतना कहते ही गुरु शिष्य के पीछे लपके। शिष्य जवान था। उसने देखा तो वह एक तरफ छिप गया। लेकिन गुरु एक खम्भे से टकरा गये। टकराने से उनका सिर फट गया और उसी क्रोधपूर्ण स्थिति में उनका मरण हो गया। मालूम है मरकर क्या हुए? चण्डकौशिक नामक सर्प। जो दृष्टिविष सर्प था। जिसका जहर भगवान् महावीर ने उतारा था।

एक मुनि क्रोध के वशीभूत होने के कारण चण्डकौशिक सर्प जैसी पर्याय को प्राप्त हुआ।

तुम आगे बढ़ो
रास्ते में पड़ी चट्टान अपने आप
पीछे छूट जायेगी।

टूटा पापड़

एक व्यक्ति एक भोज में गया। सब लोग भोजन कर रहे थे। भोजन में पापड़ परोसा जा रहा था, सभी को अखण्डित पापड़ परोसा जा रहा था। जब उसका नम्बर आया तब उसको खण्डित पापड़ मिला। सामने वाले ने इसे अपना अपमान मान लिया। परोसने वाला तो बेखबर था। लेकिन इसने इसे अपना अपमान माना, कि मुझे जानबूझ कर खण्डित पापड़ दिया गया है। यह मुझे नीचा दिखाना चाहता है, ठीक है इसका बदला जब तक न ले लूँ, तब तक चैन नहीं। अपमान का बदला कैसे लें? उसकी रात्रि की नींद चली गयी। कैसे भी हो मुझे उसके अपमान का बदला लेना है। कुछ नहीं सूझा तो उसने सोचा मुझे भी एक पंगत देनी चाहिए। पंगत कहाँ से दें। पैसे तो है नहीं। इसलिये बाजार से पैसा कर्ज लिया। कर्ज के पैसे से गाँव को पंगत दी। पंगत में सभी लोग शामिल हुए। पंगत में जब पापड़ परोसने का नम्बर आया तो सभी को अखण्डित पापड़ परोसा और जब सम्बन्धित व्यक्ति का नम्बर आया तो उसे खण्डित पापड़ परोसा। सामने वाला सहज भाव से पापड़ खाने लगा। उसके मन में कुछ नहीं था। परोसने वाले ने कहा- देखो, आज मैंने बदला ले लिया! उस दिन तुमने मुझे खण्डित पापड़ परोसा था। आज हमने भी तुम्हें खण्डित पापड़ परोसा है। उसका नतीजा दिखा दिया।

वह बोला-इतनी ही बात थी तो उसी समय मुझे टोक देते, मैं तुमसे क्षमा माँग लेता। उस खण्डित पापड़ का बदला लेने के लिये कर्जा और पंगत देने की क्या जरूरत थी।

ज्ञान का प्रारंभ पुस्तक से है,
समापन अनुभव में।

पर्ची का जवाब पर्ची से

पति-पत्नि में अनबन हो गयी। पति को कोई काम था, जिसके लिये सुबह पाँच बजे उठना था। उठने की आदत आठ बजे की थी। पत्नि से बोलचाल बंद है बोलूँ कैसे? अहंकार बीच में आ रहा है इसलिये उसने एक कागज पर लिखकर रख दिया कि कल मुझे काम है पाँच बजे उठा देना। अगले दिन पति उठा नहीं। पत्नि ने उठाया नहीं। पति जब उठा तो आठ बज चुके थे। यह देख पति तमतमा उठा। उसने कहा- मैंने लिखकर रख दिया था और इसने मुझे उठाया नहीं। बड़बड़ाना शुरू किया। अन्ततः पत्नि से पूछा- तुमने मुझे उठाया क्यों नहीं? वह बोली- आपने जो कहा था वह कर दिया था। क्या किया था? बोली-तकिया के नीचे देखो। वहाँ एक कागज रखा था, जिस पर लिखा था कि पाँच बज गये हैं उठ जाओ।

यह जीवन है। ऐसे जीवन से क्या होगा? यह व्यर्थ का जीवन है। आखिर इसी को बोलते हैं अहंकार।

भावना हो-वेदना न हो।
मालिक नहीं-मेहमान बनो।
स्वामी नहीं-व्यवस्थापक बनो।

यह भी बीत जायेगा

एक राजा था। एक बार उसे किसी संत के दर्शन का सौभाग्य मिला। संत बहुत पहुँचे हुए थे। राजा ने उनसे कहा- गुरुदेव! मुझे कोई ऐसा मन्त्र बताइये, जो मेरे जीवन में काम आ सके।

राजा की बात सुनकर संत मुस्कुराये और कहा- राजन्! मैं तुझे आज एक मन्त्र देता हूँ, जो मुझे मेरे गुरु ने दिया था। मैंने आज तक उसका उपयोग नहीं किया, शायद तुम्हें काम आ जाये। पर इस मन्त्र को तुम तब याद करना, जब तुम आपने आपको बहुत ज्यादा विपत्तियों से घिरा महसूस करो। जब तुम्हें ऐसा लगने लगे कि मैं बहुत ज्यादा संकटों से घिरा हूँ, तब तुम इस मन्त्र का उपयोग करना।

राजा ने प्रसन्नता व्यक्त की। संत ने अपनी बाँह में बँधी स्वर्ण की ताबीज को राजा को सौंप दिया। राजा ने अपनी बाँह में बाँध लिया। संत ने दुबारा याद दिलाया- सुनो, इसका उपयोग तुम तभी करना, जब तुम बड़ी से बड़ी विपत्ति में घिरे हो।

जीवन सदैव एक-सा नहीं चलता। यही स्थिति राजा के साथ हुई। अचानक परचक्र ने हमला बोल दिया। अप्रत्याशित हमले से राजा अपने आपको बचा नहीं सका। उसे अपना राज्य छोड़कर घोड़े पर सवार हो भागना पड़ा। पीछे से विरोधी सैनिक उसका पीछा कर रहे थे। भागते-भागते वह वहाँ पहुँचा, जहाँ से आगे देखने पर रास्ता बंद समझ में आ रहा था। सामने बड़ी पहाड़ी थी। क्या किया जाय? कुछ समझ में नहीं आता था। बगल में मुड़कर देखा तो एक गुफा दिख गयी। वह चुपचाप वहाँ चला गया।

कुछ देर बाद उसे पीछे से आने वाले सैनिकों के घोड़ों के टापों की आवाज सुनाई देने लगी। वह सोचने लगा कि अब तो मृत्यु ही मेरे लिये शरण हो सकती है। इसके अलावा कोई सहारा नहीं। मेरी मौत सुनिश्चित है। तभी उसे संत की बात याद आयी। उसने उस ताबीज को खोला। उस स्वर्ण की ताबीज के भीतर

एक भोजपत्र था, जिस पर लिखा था 'यह भी बीत जायेगा'। उसने पढ़ा, उसे एक नई रोशनी मिली। सोचा सब ठीक है, कितनी बड़ी विपत्ति आयी है, अब जो होगा देखा जायेगा।

राजा चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर बाद घोड़ों की टापें बंद हो गयीं। जो विरोधी सैनिक थे वह रास्ता भूलकर कहीं ओर चले गये। जब सभी निकल गये, तो राजा वहीं गुफा में रहा। कुछ दिन बाद अपनी सेना को पुनः एकत्रित किया और फिर से हमला बोला। विजय पाकर अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त कर लिया।

खोये राज्य को पाकर विजय का सेहरा बाँधे हुए जब वह अपने राज्य सिंहासन पर आरूढ हुआ तो फिर उसे अपने गुरु के द्वारा दिये गये मन्त्र का स्मरण हो आया। उसने ताबीज को फिर खोलकर देखा। पुनः पढ़ा- यह भी बीत जायेगा। यहीं उसके अन्दर की चेतना जागृत हो उठी। मैंने अपने दु:ख के दिन भोगे, वे भी बीत गये और सम्पदा व साम्राज्य मैंने पाया है यह भी बीत जायेगा। तब संसार का सब कुछ बीतने ही वाला है तब इस साम्राज्य को पाने से क्या मतलब। अब हमें जीवन के वास्तविक साम्राज्य को पाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी प्रेरणा से वह वन की ओर प्रस्थान कर गया।

ग्रहस्थ की शोभा दान ही है,
दान से पाप साफ होता है।

मन की बीमारी का इलाज नहीं

अमेरिका के एक व्यक्ति थे अण्डरसन। उनको बाईस वर्ष के उम्र में क्षय रोग हो गया। वह उस जमाने का क्षय रोग है, जब टी.बी. बहुत घातक रोग समझा जाता था। उनकी स्थिति बहुत गम्भीर हो गयी। वह युवा अपने जीवन से हताश हो गया कि अब मुझे मरना पड़ेगा। एक दिन एक बुजुर्ग वहाँ पहुँचें। उनने उसकी स्थिति को देखा। उसे समझाते हुए कहा- सुनो, तुम युवा हो, तुम्हारी बीमारी का तो इलाज है, पर दिमागी बीमारी का इलाज नहीं है। इसलिये मैं तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि तुम्हारी दिल की बीमारी को तुम दिल तक सीमित रखो, उसे दिमाग तक न पहुँचने दो। यदि तुम उसे दिमाग तक पहुँचा दोगे तो वह कभी ठीक नहीं होगी। उस बुजुर्ग का इतना कहना था कि उसकी चिन्तन की धारा बदली और उसने तय कर लिया कि तन की बीमारी को मुझे मन पर हावी नहीं होने देना है। तब से उसे धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ होने लगा। आगे चलकर वही अमेरिका का मंत्री बना।

दुराग्रह से मूर्खता का और आलस से भाग्यहीनता का जन्म होता है।

जो होता है सही होता है

एक राजा था, अचानक उसके हाथ की अंगुली कट गयी। वहीं उसका मन्त्री खड़ा था। अंगुली कटने पर राजा को समझाते हुए मन्त्री ने कहा- राजन्! आप घबराइये नहीं, जो होता है सही होता है।

राजा तमतमा गया। यह भी कोई बात हुई। मेरी अंगुली कटी और तुम कह रहे हो सही हुआ। अंगुली कटना सही होता है क्या? उसने अपने मन्त्री को कैद कर दिया।

महिने भर बाद राजा जंगल में शिकार करने के लिये गया। वह अपने साथियों से बिछुड़ गया। अचानक वह आदिवासियों के गिरोह से घिर गया। उस दिन आदिवासी अपने अन्धविश्वासों से प्रेरित होकर एक अनुष्ठान कर रहे थे, उसमें उन्हें नरबलि देनी थी। उन्हें किसी हष्ट-पुष्ट मनुष्य की आवश्यकता थी।

उन्हें राजा जैसा व्यक्ति मिल गया, जो उपयुक्त था। उसे पकड़ लिया गया और उसे बलि की वेदी पर चढ़ा दिया गया। उनका पुरोहित आया, उसने देखा। अब क्या है? बलि दी ही जाने वाली थी कि उस पुरोहित ने कहा- बलि देने से पूर्व जाँच की जानी चाहिए कि बलि दिये जाने वाले में किसी प्रकार की कमी तो नहीं है। जब राजा की जाँच की गयी तो उसकी अंगुली कटी पाई गयी। पुरोहित ने कहा- यह आदमी काम का नहीं है, इसे छोड़ दो।

जैसे ही उसे छोड़ा गया, वैसे ही उसे मन्त्री का वाक्य याद आया, जो होता है अच्छे के लिये होता है। वह सीधा आया और मन्त्री को मुक्त करा दिया। अपने दरबार में कहा- मन्त्री तुमने बिलकुल ठीक कहा था। जो होता है वह अच्छे के लिये होता है। तुम्हारी बात बिलकुल सही है। लेकिन मुझे एक बात समझ में नहीं आयी कि मेरी अंगुली का कटना तो अच्छे के लिये हुआ, पर तुम्हारा यह कहना कि जो होता है अच्छे के लिये होता है, तुम्हारे लिये सही कैसे हुआ?

मन्त्री ने कहा- महाराज, मेरे लिये भी सही हुआ नहीं तो मैं बलि का बकरा बना होता। यदि मैं यह बात नहीं कहता, तो आप मुझे कैद में नहीं रखते, और कैद में नहीं रखते तो आप मुझे भी शिकार के लिये साथ ले जाते।

आप तो कटी अंगुली के कारण बच जाते और मुझे बलि पर चढ़ना पड़ता इसलिये जो होता है वह अच्छे के लिये होता है। बहुत बड़ा सूत्र है जीवन में, उसको अपनाइये। जो होना होता है वही होता है। वही होता है जो होना होता है।

बेटा झूठा या पिताजी

घर में फोन की घंटी बजी, घर में एक पाँच-सात साल के बच्चे ने बड़े उत्साह के साथ फोन उठाया। पूछा- कौन? आपके पापा से बात करना है। तुरन्त ही उत्साहपूर्वक गया और कहा- अमुक अंकल का फोन है वे आपसे बात करना चाहते हैं। अच्छा मुझसे बात करना चाहते हैं। जाओ उनसे कह दो पापा घर पर नहीं हैं। पापा आप तो यहीं हो। मैं कह रहा हूँ कि कह दो कि पापा घर पर नहीं हैं। बच्चा फोन पर आया और कह देता है कि- पापा कह रहे हैं कि कह दो पापा घर पर नहीं हैं। पापा ने सुन लिया। वे एकदम तमतमा गये और एक तमाचा दिया। बोले-बेटे! तूने मुझे झूठा बना दिया। अब सब पूँछो, बाप ने बेटे को झूठा बनाया कि बेटे ने बाप को झूठा बनाया?

**अवसर पर किया गया
छोटा सा उपकार भी
महान होता है।**

यथा नाम तथा काम

सीता हरण के उपरान्त रावण ने अपने सारे हथकण्डे अपना लिये लेकिन सीताजी ने उसे स्वीकारने की बात तो बहुत दूर, उसकी ओर देखा तक नहीं। रावण हार गया और हारकर वह सीधे कुम्भकर्ण के पास पहुंचा। उसने कुम्भकर्ण से कहा कि भाई देखो सीता के बिना मेरा जीवन दूभर है, मैं सीता के बिना जी नहीं सकता। बहुत दिन हो गये सीता ने मुझे आज तक स्वीकारा नहीं और जब तक स्वीकारेगी नहीं मेरा जीना मुश्किल हो जायेगा कुछ तो उपाय बताओ। कुम्भकर्ण ने कहा कि भैईया आप इतने नीतिवान, ज्ञानवान होने के बाद भी मेरे पास आये हो? जब आपको पता है कि सीता श्री राम को छोड़कर अन्य किसी को स्वीकार नहीं कर सकती, तो आप राम का रूप धरकर सीता के पास क्यों नहीं चले जाते? आपके पास तो रूप बदलने की क्षमता है। उस समय रावण ने जो जवाब दिया, वह बहुत महत्वपूर्ण है, उसने कहा कि अरे पगले ऐसा तो मैं कई बार कर चुका हूं पर क्या बताऊँ **जब-जब मैं राम का रूप धर करके वहां जाता हूं तो मेरे मन में फिर वैसे दुर्भाव ही नहीं आते।** मनुष्य की मनोवृत्ति को समझने के लिये यह बड़ा सटीक उदाहरण है। रावण जैसा आतातायी, दुराचारी व्यक्ति भी यदि राम का रूप धारण करता है तो उसके भीतर से सात्विकता प्रकट होती है।

जैसी संगत-वैसी रंगत

कहते हैं पानी में जैसा रंग डाल दो पानी का रंग वैसा ही हो जाता है। ऐसे ही मनुष्य जैसे लोगों की संगति में रहता है उसका संपूर्ण जीवन वैसा हो जाता है। **कुँऐं में अगर लता उतरती है तो अधोगामी हो जाती है और किसी स्तंभ को पकड़ लेती है तो ऊर्ध्वगामी हो जाती है।** हमारा जीवन भी यदि गलत लोगों की कुसंगति में पड़ जाता है तो रसातल में चला जाता है और अच्छे लोगों की संगति पा जाता है तो उत्कर्ष को छू लेता है।

विचारों से बनता संसार

नदी किनारे एक कुम्भकार मिट्टी को आकार दे रहा था, मिट्टी से चिलम बना रहा था। अचानक उसका मूड बदला और उसने चिलम की जगह घड़ा बनाना शुरू कर दिया। पास बैठी कुम्हारिन ने कुम्हार से पूछा कि मिट्टी का आकार क्यों बदल गया? कुम्हार ने कहा, बस यूं ही मेरा विचार बदल गया, माटी ने तपाक से कहा तुम्हारा विचार क्या बदला मेरा तो संसार बदल गया। विचार से संसार है। एक विचार है जो हमारे जीवन का उत्कर्ष करता है और एक विचार है जो हमें रसातल में ले जाता है। विचारों के बल पर ही व्यक्ति मुक्ति का मार्ग खोजता है और विचारों के बल पर ही व्यक्ति नरक का पात्र बनता है दोनों चीजें विचार के ऊपर निर्भर हैं। मिट्टी के मंगल कलश में और चिलम में जमीन आसमान का अंतर है। मंगल कलश जहां मंगल द्रव्यों से चर्चित होकर माथे की शोभा बनता है, मांगलिक प्रतीक बनता है, वहीं चिलम का काम है स्वयं जलना और सामने वाले को जलाना जो स्वयं जले और सामने वाले को जलाये वह चिलम है। संसार में भी ऐसे ही दो तरह के लोग हैं, जो मिट्टी के मार्ग से मंगल कलश का रूप धारण करते हैं और सारे जगत के लिये आदर्श बनते हैं वे पूरी मानवता के लिये आदर्श बन जाते हैं जबकि कुछ ऐसे भी लोग हैं जो चिलम की तरह स्वयं जलते हैं और सारे संसार को जलाते रहते हैं।

पैसा बहुत कुछ है,
लेकिन सब कुछ नहीं है,
वह जीने का रास्ता है
लेकिन मंजिल नहीं।

आधा गिलास दूध

आप किसी के घर मेहमान हुए, सामने वाले ने आत्मीय स्वागत किया और मेवा डला आधा गिलास दूध का आपके हाथ में पकड़ाया। आधा गिलास दूध मेवा से भरा हुआ। उस गिलास को देखकर आपके मन में दो प्रकार की प्रतिक्रया हो सकती हैं। यदि आपका नजरिया सकारात्मक है तो आप अहोभाव से भरोगे और कहोगे, कितना बढ़िया आदमी है, दूध भी पिलाया तो मेवा मिश्री डला हुआ पिलाया और हो सकता है किसी के मन में ऐसी भी प्रतिक्रिया हो, अरे, बड़ा काँईयां आदमी है, दूध भी पिलाया तो आधा गिलास। दोनों प्रकार की प्रतिक्रियायें। एक व्यक्ति आधा गिलास दूध को लेकर अहोभाव से भर रहा है और दूसरा व्यक्ति आधे गिलास दूध को देखकर अपने मन में नकारात्मक भाव पैदा कर रहा है।

गुण ग्रहण का भाव रहे नित

गांधी जी को किसी आलोचक ने एक बहुत लंबा पत्र लिखा। पत्र में उन्होंने गांधीजी की नीतियों की कड़ी आलोचना की। गांधीजी ने सहज भाव से उस सब को पढ़ा और पढ़ने के बाद एक तरफ रख दिया। उनके पास उनके कोई मित्र बैठे थे, उनने पूछा-क्या बात है? बहुत एकाग्रता के साथ आपने पत्र को पढ़ा। इस पत्र में कोई खास बात थी। नहीं कोई खास बात नहीं थी। क्या कुछ था, बोले नहीं ये जो पिन है पेपर की पिन यह बड़े काम की है। इसको मैंने रख लिया है। किसी पत्र को अटैच करने में काम आयेगी। ये है गुण देखने की प्रवृत्ति, अच्छाई देखने की प्रवृत्ति।

माँ का आदमी

एक वृद्ध पिता ने मेहनत मजदूरी करके पढ़ा लिखाकर अपने बेटे को वकील बनाया। पिता की इच्छा थी कि मेरा बेटा पढ़ लिख कर बड़ा आदमी बन जाये और उसकी इच्छा के अनुरूप बेटा वकील बन गया। पिता बड़ा खुश हुआ कि मेरा बेटा बड़ा आदमी बन गया लेकिन उसे क्या पता था कि वो बड़ा आदमी तो बन गया लेकिन भला आदमी नहीं बन पाया। बेटे ने गांव छोड़कर शहर में रहकर प्रैक्टिस करना शुरू कर दिया। उसका नाम चारों तरफ फैल गया। पिता सोचता था कि मेरे जीवन के दुर्दिन अब दूर होने वाले हैं, मेरे जीवन में अब खुशियों के अंबार लगने वाले हैं। जल्दी ही मेरा बेटा आयेगा और मुझे यहां से शहर में ले जायेगा अब बुढ़ापा सुकून से गुजारूंगा। लेकिन बेटा! बेटे को तो कुछ याद ही नहीं कि किसी ने उसे जन्म दिया था। हमारा कोई पिता भी है इस बात को भी भूल गया। पिता रोज अपने बेटे के संदेश की प्रतीक्षा में दरवाजे पर बैठकर आतुरता पूर्वक डाकिये को निहारता। डाकिया आता उससे पूछता भैया कोई चिट्ठी आयी, कोई चिट्ठी नहीं वो निराश हो जाता। जब तक शरीर चला तब तक वो मेहनत मजदूरी करके अपना काम चलाता रहा लेकिन जब उसका शरीर इतना शिथिल हो गया कि पेट भरने की व्यवस्था भी उसके पास नहीं रह पायी तो उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय होने लगी। क्या किया जाये क्या करे और क्या न करे कुछ समझ में नहीं आया। गाँव भर के लोगों ने इकट्ठे होकर कहा कि, सुनो तुम्हारा बेटा अमुक शहर के अमुक मोहल्ले में रहता है तुम यहां से शहर चले जाओ तुम्हें देखकर कुछ तो पसीजेगा ऐसे कब तक काम चलेगा? लोगों ने चंदा करके उसके टिकट का इंतजाम किया। उसे बस पर बिठाया। वो शहर पहुंचा लोगों से पता पूँछता-पाँछता अपने बेटे के बंगले की तरफ बढ़ा बंगले के पास जैसे ही पहुंचा देखा कोई कार खड़ी है, अचानक बंगले का गेट खुला एक युवक तेजी से भागता हुआ बाहर निकला। कार का गेट खोला और बैठने को हुआ तब तक वह बूढ़ा नजदीक पहुंच चुका था, देखा ये तो मेरा बेटा है। मन में बड़ी खुशी हुयी कि मेरा बेटा कितना बड़ा आदमी हो गया, इतना बड़ा

बंगला और इतनी अच्छी कार। पूछा बेटे कैसे हो? बेटे ने पिता को घूरती निगाह से देखा और कहा ठीक हूँ और इतना कहकर कार पर सवार हुआ कार आगे बढ़ गई। पिता हक्का बक्का रह गया। तभी उसकी ममता ने फिर जोर मारा अरे कोई जरूरी काम होगा तभी तो गया और मैं हूँ कि बिना बताये आ गया। अदालत का टाईम हो रहा है हो सकता है अदालत गया होगा। कोई बात नहीं अदालत गया चलो मैं भी अदालत चलता हूँ इस बहाने शहर भी घूमना हो जायेगा। अभी तो मैंने अपने बेटे को जी भर के निहारा भी नहीं। ये सोचकर वो आगे बढ़ा सीधे अदालत तक पहुंच गया। अदालत में ज्यादा भीड़ नहीं थी पहले ही केस में उसके बेटे को बहस करनी थी प्रतिपक्षी वकील की प्रतीक्षा की जा रही थी। वो वृद्ध संकोचवश देहरी पर बैठ गया भीतर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। जज साहब की दृष्टि उस बूढ़े पर पड़ी और फिर ध्यान से देखा कि ये बूढ़ा इस वकील को टकटकी लगाकर देखे जा रहा है, तो उन्होंने वकील से पूछा वकील साहब दरवाजे पर बैठा ये आदमी कौन है आपका कोई संबंधी तो नहीं, उसका चेहरा भी आपसे कुछ मिलता जुलता है। वकील साहब को तो ऐसा लगा जैसे किसी ने उन पर घड़ों पानी डाल दिया फिर भी उन्होंने अपने आप को तत्क्षण संभालते हुये कहा कि जी वो मेरे गांव का आदमी है। ये शब्द उस बूढ़े ने सुने तो उसके हृदय को बिंध गये और स्वाभिमान से उसका चेहरा उद्दीप्त हो गया। उसने खड़े होकर उसी मुद्रा में कहा कि जज साहब ये आदमी ठीक कहता है कि मैं इसके गाँव का आदमी हूँ मैं इसके गाँव का आदमी तो हूँ ही इसकी माँ का भी आदमी हूँ। ये आज के लोगों का चरित्र है। जज साहब उठे और उस बूढ़े व्यक्ति के पांव छू लिये और वकील साहब को समझाते हुये बोले कि वकील साहब यद्यपि आपके व्यक्तिगत जीवन के विषय में मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं है पर इतने अभावों के बीच रहकर यदि मेरे पिता ने मुझे इस योग्य बनाया होता तो गाँव का आदमी कहना तो बहुत दूर मैं उन्हें जमीन पर पाँव भी नहीं रखने देता।

जहाँ प्रेम वहाँ लक्ष्मी

एक सेठ था। रात्रि में उसने सपना देखा कि लक्ष्मी सपने में आयी और लक्ष्मी ने सेठ से कहा मैं तुम्हारे घर बहुत दिन रह ली अब मैं तुम्हारे यहां से जाना चाहती हूँ। सेठ ने लक्ष्मी की बात सुनी और उसने कहा ठीक है आप रहीं इसका धन्यवाद, आप जाना चाहती हो तो मैं रोक तो सकता नहीं पर मेरी इच्छा हैं कि आप यहां रहो तो बहुत अच्छा। लक्ष्मी ने कहा कल मैं तुम्हारे पास आऊंगी तो तुम मुझसे कोई एक वरदान माँग सकते हो क्योंकि तुमने मुझे बहुत अच्छे से रखा है मेरी बहुत सेवा की है मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। सेठ ने कहा ठीक है। अगले दिन सेठ की जैसे ही सुबह आँख खुली उसने तीनों बहुओं को बुलाया और पूछा कि रात में ऐसा-ऐसा सपना आया क्या करूँ? पहली बहू ने कहा पिताजी अपने पास वैसे तो सब कुछ ठीक है पर एक बंगला मांग लो तो बहुत अच्छा रहे। ससुर को बात कम समझ में आयी। दूसरी ने कहा बाकी सारी बात तो ठीक हैं एक कार मँगवा लें तो अच्छा रहेगा। लक्ष्मी जा तो रही है कम से कम एक कार तो होगी हमारे पास। तीसरी छोटी बहू जो बहुत समझदार थी उसने कहा पिता जी अपने पास सब कुछ तो है, घर है, बंगला है, गाड़ी है, घोड़ा है, किसी चीज का अभाव तो है, नहीं और हम लोग बड़े प्रेम से रह रहे हैं मेरा आपसे एक निवेदन है कि लक्ष्मी से इतना माँगिये तुम्हें जाना है तो जाओ पर हमें बस इतना वरदान दे दो कि हमारे परिवार के सारे सदस्य एक दूसरे के साथ प्रेम से रह सकें इसके अलावा हमें कुछ नहीं चाहिये। अगले दिन सपने में लक्ष्मी फिर से आयी और लक्ष्मी ने पूछा सेठ जी माँगिये वरदान क्या माँगना है? तो सेठ ने तीसरी बहू की बात को दोहराते हुए कहा कि माते हमें आप से कुछ नहीं चाहिये आपकी बहुत कृपा है। आपको जाना है तो जाओ लेकिन बस एक वरदान दे जाओ कि जिस तरह आज हम प्रेम से रह रहे हैं हमारा पूरा परिवार इसी तरह प्रेम के साथ रह सके। लक्ष्मी एक दम चौंक पड़ी और कहा सेठ तुमने तो बहुत ऊंचा वरदान माँग लिया। तुमने तो मुझे विवश कर दिया, अब तो मैं तुम्हारे घर से जा ही नहीं सकती क्योंकि जिस घर में प्रेम होता है वहीं लक्ष्मी का वास होता है अन्यत्र कहीं नहीं। कहते हैं लक्ष्मी उस घर में वहीं टिक गयी।

धर्म जीवन का आधार

एक आदमी अपना मकान बनवा रहा था। मकान बनाने के लिए वह बार-बार दीवार उठाता कि दीवार गिर पड़ती। वह दो-चार फुट भी नहीं उठ पाई। वह काफी परेशान था। मकान बन नहीं पा रहा था। एक दिन उसने इधर से गुजरते हुए एक संत को अपनी पीड़ा सुनाई। संत ने उसकी बात सुनी और हँसकर बोले- ''भाई दीवार उठाना है तो नींव खोदो।'' उसने कहा- मैं नींव नहीं खोदता, मकान के लिए नींव की आवश्यकता ही नहीं। लोग बेवकूफ हैं, जो अपना बहुत सारा धन उस नींव में लगा देते हैं, जो दिखाई तक नहीं देती। संत उसकी अज्ञानताभरी बात सुनकर हँसते हुए बोले- ''अरे भाई! मुझे हँसी आ रही है तुम पर, जो अपना मकान बिना नींव के खड़ा करने जा रहे हो। तुमसे भी ज्यादा हँसी तो उन पर आ रही है, जो अपने जीवन के महल को बिना नींव के खड़ा करना चाहते हैं।''

मकान को खड़ा करने के लिए आधार जरूरी है। धर्म हमारे जीवन का आधार है।

कषाय से चित्त में उफान आता है
और ज्ञान से मन को समाधान मिलता है।

''अंजन बना निरंजन''

निःशंकित अंग में समंतभद्र आचार्य श्री ने अंजन चोर का स्मरण किया है। अंजन जो श्रद्धा के बल पर निरंजन हो गया। अंजन एक राजकुमार था, किन्तु उसका आचरण कभी राजकुमारों जैसा नहीं रहा। वह बड़ा व्यसनी था। राजाज्ञा का उल्लंघन करना उसकी प्रवृत्ति थी। उसके आतंक से क्षुब्ध हो राजा ने उसे निष्कासित कर दिया। अंजन अपने व्यवसनों की पूर्ति के लिये चोरी करने लगा। तंत्र-मंत्र का ज्ञाता था, अतः शीघ्र ही कुख्यात अंजन चोर बन गया।

राजगृही में वसंतसेना नामक एक रूपवती वेश्या रहती थी। उसके सुंदर रूप-लावण्य पर बड़े-बड़े राज्यों के राजकुमार मुग्ध थे। वे उसके भार के बराबर स्वर्ण देने तत्पर थे। सबकुछ न्यौछावर करने तैयार थे। वह रूपवती बसंतसेना इस अंजन के रूप पर आसक्त थी।

एक दिन अंजन उसके भवन में आया। देखा-बसंतसेना उदास है। अंजन ने पूछा-''प्रिये, उदास क्यों हो, क्या बात हो गई? वसंतसेना- ''नहीं, कुछ नहीं, कोई बात नहीं।'' अंजन- ''कुछ कैसे नहीं है। मैं तुम्हारे मन की पीड़ा तुम्हारे मुख पर देख रहा हूँ। जरूर कुछ छुपा रही हो। क्या मुझ पर विश्वास नहीं? वसंतसेना-नहीं, ऐसी बात नहीं है, तुम पर ही तो विश्वास करती हूँ। अब अंजन व्यग्र हो उठा और बोला- ''फिर मैं क्या करूँ जिससे तुम प्रसन्न हो सको।

वसंतसेना- तुम मुझे प्रसन्नचित्त देखना चाहते हो तो रानी कनकप्रभा के कंठ में जो हीरक हार है, वह ला दो। वह बहुत सुंदर है। अंजन- बस इतनी सी बात। मैं वैसा-ही हार तुम्हारें कंठ में डाल दूँगा। वसंतसेना बीच में ही बोली- ''वैसा-ही नहीं, मुझे वही हार चाहिये।'' अंजन चिंतित हो गया-वही हार....। वह हार लाना तो असंभव है। राजमहल में बहुत कड़ा पहरा है। तुम और जो कहो मैं करूँगा, लेकिन महल में सेंध लगाना दुष्कर है।

वसंतसेना-तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम नहीं है होता, तो वह हार लाकर देते।

अंजन- ''ऐसा मत कहो, किन्तु महल में जाकर सुरक्षित लौटना नहीं हो सकता।''

वसंतसेना- ''ठीक है, मुझे मालूम हो गया, कितना प्रेम करते हो। प्यार करनेवाले तो अपनी प्रियतमा के लिये प्राण भी न्यौछावर कर देते हैं।'' एक वेश्या प्रेयसी का मुखौटा लगाकर जो बोल सकती है, वही वसंतसेना ने अंजन से कहा- ''सच्चा प्रेम करते हो तो वही हार लाकर दो, अन्यथा मैं मान लूँगी कि तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं है। फिर मेरे इस महल में तुम्हारा क्या स्थान?''

वह वेश्या के मोहजाल में फँस गया, विवश हो हार लाने तैयार हो गया। वेश्या स्वार्थ की भाषा जानती है, प्रेम की नहीं। प्रेम में स्वार्थ हो, तो वह प्रेम निष्प्राण होता है। अंजन उसके प्रेम में अंधा हो, अंधकार होते ही हार चुराने चला। उसके पास एक विशेष अंजन था, जिसे लगाकर अदृश्य हो वह रानी के महल में प्रविष्ट हो गया। संयोग से रानी अकेली थी। अंजन ने बड़ी कुशलता से कंठ से हार निकाल लिया। हार को मुट्ठी में छुपा वह चला। हार को तो उसने छुपा लिया, पर उसकी कांति को नहीं छिपा सका। परहेदार को कोई चमकती वस्तु भागती दिखी। वह समझ गया कि अंजन चोर अदृश्य हो कुछ चुराकर भाग रहा है। जोर से आवाज लगाई- ''पकड़ो-पकड़ो, अंजन चोर भाग रहा है। आगे अंजन चोर और पीछे राजसैनिक। जान बचाने वह बेतहाशा भागने लगा। शरीर पसीना-पसीना हो गया। अंजन का विशेष असर छूटने लगा। प्राणों की रक्षा के लिए उसने हार भी फेंक दिया। सैनिकों ने फिर भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। वे अंजन को पकड़कर इनाम पाने का सुनहरा मौका क्यों छोड़ते। अंजन को अब समझ में आने लगा कि प्रेम के मोह में अंधे होकर उसने अपने प्राण संकट में डाल दिये। वेश्या का स्वार्थ समझ में आ गया और मन में विरक्ति के भाव आ गये।

भागता हुआ अंजन श्मशान पहुँच गया। चितायें जल रही थीं। उनके प्रकाश में उसे एक युवक पेड़ से सींको के सहारे उतरते हुये दिखा। नीचे नुकीले भाले, बरछे आदि गड़े थे। अंजन ने उससे पूछा- ''आप कौन हैं? ये भाले आदि

इस तरह क्यों गाड़े हैं? '' युवक ने बताया- ''मैं नगरश्रेष्ठि जिनदत्त का अनुचर हूँ। वे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति समर्पित सच्चे श्रावक हैं। उन्हें आकाश-गामिनी विद्या सिद्ध है। मेरे अनुनय करने पर उन्होंने मुझे विद्या सिद्ध करने की विधि बताई। 108 सींकों के झूले पर बैठकर मंत्र पढ़कर इन्हें काटने से आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हो जायेगी। मैंने यह सब आयोजन तो कर लिया, किन्तु सींकों को काटने का साहस नहीं हो रहा है।''

अंजन ने सोचा- 'राजा के सैनिक आते ही होंगे, मरना तो ऐसे भी है, क्यों न यह विधि प्रयोग कर लूँ।''

अंजन चोर ने युवक से मंत्र पूछा। युवक ने मंत्र बता दिया और कहा- ''तुम ही आजमा लो, मैं तो शंका से दुविधा में पड़ा हूँ।'' अंजन सींकों के झूले पर चढ़ गया। उसने मंत्र पढ़ा और एक झटके में 108 सीकें तलवार के एक वार से काट दीं। उसके मन में इस पार या उस पार की श्रद्धा थी। वह जैसे ही गिरने को हुआ कि आकाश-गामिनी विद्या सिद्ध हो गई। वह गिरा नहीं। विद्यादेवी ने उससे पूछा-''क्या चाहता है?''

अंजन- ''श्रेष्ठि जिनदत्त के प्रताप से यह सिद्धि मिली है, उनके दर्शन करना चाहता हूँ। वहाँ ले चलो।''

जिनदत्त उस समय सुमेरू पर्वत पर अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना के लिये गये थे। अंजन चोर वहाँ पहुँचा दिया गया। उसने जिनदत्त को प्रणाम कर कहा- ''मैं अंजन चोर हूँ।''

सेठजी-''क्या तुम वही अंजन हो, जिससे राजगृही और उसके आसपास का सारा अंचल कांपता है?''

अंजन- ''हाँ श्रेष्ठिवर, मैं ही वह अधम पापी हूँ। न जाने मैंने कितनों को लूटा और मारा है।''

सेठजी- ''यहाँ किस प्रयोजन से आये हो?''

अंजन- ''आपके प्रताप से बताई विधि से मुझे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध

हुई है। अब कृपाकर मुझे आत्मकल्याण का, आत्मसिद्धि का मार्ग बतायें। मुझे अब और कुछ नहीं चाहिये। सेठजी उसकी बात से बहुत प्रसन्न हुये और उससे बोले- ''वह मार्ग जानना हो तो मेरे पूज्य गुरुवर मुनि चारणऋद्धिधारी की शरण में जाओ।''

अजंन श्रद्धा- भाव से मुनिश्री के चरणों में गया। वहाँ अपनी आलोचना की, अपने कंधों तक लटकते केशों को अपने हाथ से उखाड़कर ध्यानस्थ हो बैठ गया। श्रद्धा से अंजन भी निरंजन हो गया।

अनेकान्त दृष्टि हो

गांधी जी कहते थे- ''मैं अपने विरोधियों को भी सम्मान की दृष्टि से देखता हूँ, क्योंकि मुझमें विरोधियों की नजर से देखने की क्षमता आ गई है, मुझे अनेकांत के सिद्धांत पर विश्वास हो गया है। उनकी दृष्टि से वो सही हैं और मेरी दृष्टि से मैं सही हूँ।''

एक ग्लास ''आधा भरा है'' यदि कहते हैं, वह ''आधा खाली है'' यह भी कहा जा सकता है। जो स्वयं अंदर से खाली है, वह ''आधा खाली है'' कहता है। जो अंदर से पूर्ण है, वह ''आधा भरा है'' कहता है। यह स्वयं की परिणति का द्योतक है। अंतर में जो होता है, वह ही ध्वनित होता है।

विचार करो-व्याकुल मत होओ।
प्रयास करो-परेशान मत होओ।
सजग रहो-शंका मत करो।

नजरिया अपना-अपना

द्रोणाचार्य पाण्डवों और कौरवों को धनुर्विद्या सिखा रहे थे। सरसंधान चल रहा था। बीच में द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा कि देखकर आओ ये पास के गाँव के लोग कैसे हैं? दुर्योधन गया और वापस लौटकर उसने कहा- ''गुरुदेव! आपने मुझे कैसे गाँव में भेज दिया? यह गाँव तो बहुत बेकार है। यहाँ के लोगों के मन में न कोई शिष्टता है, न ही सभ्यता। सबके सब उद्दंड और अहंकारी लोग हैं। मुझे तो पूरे गाँव में एक भी विनम्र आदमी नहीं दिखा है।

द्रोणाचार्य ने थोड़ी देर बाद युद्धिष्ठिर को भेजा। युद्धिष्ठिर ने लौटकर कहा- ''गुरुदेव! इस गाँव के लोग तो बड़े सभ्य, सरल और सुशील हैं।'' अतिथि के सत्कार में बहुत आगे हैं। प्रत्येक व्यक्ति विनम्रता की मूर्ति प्रतीत होता है। मुझे तो एक भी व्यक्ति गुणहीन दिखाई नहीं पड़ा।''

कितना अंतर है दोनों के कथनों में? यह दृष्टियों का अंतर है। यही अंतर होता है एक सम्यग्दृष्टि और एक मिथ्यादृष्टि में। अभिमानी को सब घमंडी और विनम्र को सब सरल प्रतीत होते हैं।

सुधार की संभावना

गाँधीजी ने अपने आश्रम में किसी शराबी को शरण दे दी। आश्रम के साथी व सहयोगियों में मंत्रणा होने लगी। उन्हें यह शोभनीय नहीं लग रहा था कि गाँधी जी के आश्रम में शराबी रहे। सभी मिलकर गाँधीजी के पास गये। उन्होंने कहा- ''बापू इससे तो आश्रम बदनाम हो जायेगा।'' बापूजी ने जो कहा वह चिन्तन के योग्य है। वे बोले- ''मरीज डाक्टर के पास नहीं आयेगा, तो कहाँ जायेगा?''

ऐसे होता है स्थितिकरण

खजुराहो में एक बार कोई मुनि आये थे। उनकी चर्या से वहाँ के लागे असंतुष्ट थे। वहाँ उन्हें कपड़े पहनाने की तैयारी हो गई। पंडित जगन्मोहनलाल शास्त्री उन दिनों सतना में थे। उन्हें सूचना मिली कि खजुराहो के एक पंडित की इसमें बहुत बड़ी भूमिका है। कपड़ेवालों को मुनियों को कपड़ा पहनाने में बड़ा आनंद आता है। जगन्मोहनलालजी तुरंत खजुराहो रवाना हो गये। वहाँ उन्होंने वस्तुस्थिति का पता किया। बताया गया कि महाराज जी दिनभर अपने शरीर पर पानी डालते रहते हैं, बार-बार घास पर लेट जाते हैं, रात्रि में इधर-उधर चहलकदमी करते हैं। पंडित जी ने लोगों को समझाया- देखो भाई, कपड़ा पहनना- पहनाना तो सरल है, किन्तु कपड़ा उतारना बहुत कठिन है। कई भवों के पुरुषार्थ का फल मिलता है, तब कहीं मुनिअवस्था धारण कर पाते हैं। इतना बड़ा फैसला करने के पहले क्या आपने महाराज जी से कुछ चर्चा की? सभी ने कहा- ''नहीं।''

सभी के ''नहीं।'' कहने पर उन्होंने सब को रोका। स्वयं महाराज जी के पास गए और विनयपूर्वक नमस्कार कर उनसे पूछा-''महाराजजी! आपने कितने सौभाग्य से यह मुनिपद धारण किया है। महाव्रतों का पालन तो अत्यंत दुर्लभ है। अनेक जन्मों के पुण्य और पुरुषार्थ के फल से यह अवस्था मिलती है। अब आपको कौन- सा कष्ट है? कौन-सी परिस्थिति बन गई है? इस विषय में जो सुना है, वह इस पद की गरिमा के अनुरूप नहीं है।''

महाराज की आँखों में पश्चातात्ताप के आंसू आ गये। उन्होंने बताया- ''पंडित जी, शरीर में बहुत वेदना होती है। सारे शरीर में दाह हो रही है। एक सप्ताह से ठीक से आहारचर्या नहीं हो रही है। इस दाह को शांत करने के लिये शरीर पर बार-बार पानी डालता हूँ। रात्रि में कमंडल का जल खत्म हो जाने पर घास पर लेटना पड़ता है। मैं स्वयं बड़ा चिंतित रहता हूँ। पता नहीं कैसे पाप का उदय आ गया? क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता है।

पंडितजी को वस्तुस्थिति समझ में आ गई। उन्होंने मुनिवर से कहा- ''महाराज! आप महाव्रती हैं। आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि तन की दाह को शांत नहीं किया जा सकता, मन की दाह को शांत किया जा सकता है। इस आत्मा ने नरकों की यातनायें भी सही हैं, फिर भी इसका कुछ नहीं बिगड़ा, तो फिर इस थोड़ी-सी वेदना से विचलित होकर आप अपने मार्ग से स्खलित क्यों होते हैं? हमारा कर्त्तव्य है, हम आपकी ठीक से वैयावृत्ति करेंगे। आप इस ओर से निश्चिंत रहें।''

बाहर आकर पंडितजी ने वहाँ के लोगों को तेज स्वरों में कहा- ''कपड़ा पहनाने की कोशिश करने के पहले आप लोगों ने स्थिति को जानने की कोशिश क्यों नहीं की? क्या ठीक से वैयावृत्ति करना नहीं चाहिये? महाराज अस्वस्थ हैं, तो उनकी चिकित्सा कराना भी तो हमारा कार्य है। ठीक से आहारचर्या कराना, अपथ्य न देना क्या आवश्यक नहीं है? तुम अपना कर्त्तव्य भूलकर साधु को पथ से स्खलित बनानेवाली परिस्थितियाँ बना रहे हो।''

ईर्ष्या की आग में
जो भी हाथ डालेगा
वह जलेगा।

सेठ हो तो सुगनचन्द जैसा

राजा हरजसराय जी के सुपुत्र सेठ सुगनचंद अगर धन-संपदा के स्वामी थे तो वे बड़े दानी भी थे। एक बार किसी खुशी के अवसर पर इन्होंने पूरे नगर में मिठाई बँटवायी। उनके सेवक घर-घर मिठाई बाँट रहे थे। उसी नगर में एक गरीब किन्तु स्वाभिमानी जैनव्यक्ति रहता था। उसने मिठाई स्वीकार नहीं की। सेठ जी के कारिंदो ने पूछा- ''भाई! क्यों इनकार कर रहे हो?'' उसने कहा- ''भाई! मेरा सेठजी से कोई व्यवहार नहीं है। मैंने कभी कुछ दिया नहीं, तो फिर उनकी भेंट कैसे ले सकता हूँ?''

वे लोग लौट गये। सेठ जी ने पूछा- ''सबको मिठाई बाँट आये, कोई छूट तो नहीं गया?'' सेवकों ने बताया- ''केवल एक व्यक्ति ने भेंट नहीं ली। वह कहता था- मेरा सेठजी से कोई व्यवहार नहीं है।'' सेठजी बोले- कोई बात नहीं, चलो मैं चलता हूँ।'' सब लोग आश्चर्य में पड़ गये। इतने बड़े श्रेष्ठि, जो राजा को धन उधार देते हैं, वे एक गरीब को मिठाई भेंट करने स्वयं जा रहे हैं।

सेठजी ने कहा- ''वह भी हमारे समाज का ही अंग है, उसे कैसे छोड़ दूँ?'' बग्घी पर सेठजी और पीछे-पीछे सेवक मिठाई लेकर चले। उसकी दुकान के कुछ पहले बग्घी से उतरकर सेठ जी पैदल उसकी दुकान पर गये। वह चने बेचता था। कुछ चने उठाकर फाँक गये। वह बेचारा बहुत दुविधा में पड़ गया, समझ ही नहीं पा रहा था। सेठ जी ने उससे पानी माँगा। उसके पैरों तले जमीन खिसक गई। इतने बड़े सम्मानीय व्यक्ति उसकी छोटी-सी दुकान पर आये, चने खाये, अब पानी मांग रहे हैं। कैसे पानी पिलाऊँ! सुराही तक तो टूटी-सी है। उसे चिंता में देख सेठ जी ने स्वयं टूटी सुराही झुकाई और अंजुलि से पानी पी लिया। फिर उनका इशारा पाते ही सेवकों ने मिठाई की टोकरी लाकर उसके सामने रख दी। वह बोला- ''सेठ जी! मैंने आपको कभी कुछ दिया नहीं, मैं आपसे यह कैसे ले सकता हूँ?'' अरे भाई! मैंने तो तुम्हारा खाया भी और पिया भी है। अब तो ग्रहण कर लो।'' इतना सुनना था कि वह सेठ के चरणों में गिर गया।

वात्सल्य हो तो ऐसा

फलटन में एक जैनपरिवार था। परिवार के मुखिया सात प्रतिमाधारी थे। वे बहुत सरल और धर्मज्ञ थे। सारा परिवार धर्मपरायण था। दुर्भाग्य से उनका एक पौत्र व्यसनों से ग्रस्त था। वह कुल का कलंक बना हुआ था। वह एक वेश्या के साथ ही रहने लगा था। उसके कारण सारा परिवार बहुत दुखी था। एक ओर सब सदाचारी, व्रती, जिनधर्म के अनुयायी, देवशास्त्र गुरु के प्रति आस्थावान् और दूसरी ओर वह व्यसनों में लिप्त, वेश्यागामी। परिवार के लोगों ने उससे संबंध ही नहीं रखा। वर्षो बीत गये। अब एक शादी का शुभ अवसर आया। परिवार में उमंग उत्साह छा गया। सब नाते-रिश्तेदारों को निमंत्रण भेजे गये। परिवार के प्रमुख दादाजी ने अपने लड़कों से पूछा- ''सबको निमंत्रण दे दिया? उस लड़के को बुलाया कि नहीं?'' उसके पिता ही कहने लगे-''दादा! उस कुल-कलंकी को बुलाने से जग में हँसाई होगी।'' दादाजी ने समझाया- ''बेटे! खून के रिश्ते ऐसे नहीं भुलाये जाते। जाओ, उसे भी बुला लाओ।''

दादाजी की बात टाली नहीं जा सकती थी। न चाहते हुये भी उसके छोटे भाई को एक निमंत्रण पत्र देकर भेजा गया। वो गया, उसने ऊपर से छोटे भाई को आते देखा, परंतु नीचे नहीं आया। छोटे भाई ने भी दरवाजे से ही कार्ड डाल दिया और कह दिया कि शादी में बुलाया है। तिरस्कार का उत्तर भी तिरस्कार से मिला। उसने ऊपर से ही कहा- ''फुरसत नहीं है।''

दादाजी ने पूछा- ''कौन गया था? क्या कहा उसने?'' छोटे ने बताया-वह नहीं आयेगा। उसके मन में पाप है, कैसे आयेगा?

दादाजी- ''उससे बात हुई? क्या उसने स्वयं कुछ कहा?''

छोटा- ''नहीं बात नहीं हुई। मैं तो दरवाजे पर कार्ड डाल आया हूँ।''

दादा ने उसे समझाया-''बेटा! कभी भी किसी को बुलाओ, तो मान सम्मान के साथ बुलाना चाहिये, उपेक्षा या तिरस्कार से नहीं। ठीक है, मैं ही जाता हूँ।''

सारा परिवार स्तब्ध रह गया। 75 वर्ष के बुजुर्ग, सात प्रतिमा के धारी उस कुल-कलंकी को बुलाने एक वेश्या के यहाँ जा रहे हैं, पर उनके अंतस् में वात्सल्य-भाव भरा था। उस लड़के को पता चला कि दादाजी उसे बुलाने आ रहे हैं। घबरा गया। दरवाजें पर भागा आया। दादा को सामने देख उनके चरणों में गिर पड़ा। आँखों से अश्रुधार बह चली। दादाजी! आप मुझ अधम के लिये यहां क्यों आये? मैं पापी, आपकी मर्यादा और प्रतिष्ठा धूल में मिलाता रहा। अरे मैं नहीं आता तो क्या अंतर पड़ता था? आज आपकी इस करुणा ने, वात्सल्य ने मेरी आत्मा को झकझोर दिया है। मैं आज आपके इन पावन चरणों में संकल्प लेता हूँ कि सारे व्यसन त्यागकर आपकी बताई राह पर चलूँगा।

इतना सुनना था कि दादाजी ने उसे अपने हृदय से लगा लिया और कहा- ''बेटा! सुबह का भूला यदि शाम को घर लौट आता है, तो वह भूला नहीं कहलाता है।''

विषयासक्त मन से बंध होता है
तथा विषय रहित मन मुक्ति का साधन है।

वचनों की कीमत

एक राजा था, उसने एक ज्योतिषी को बुलाया और उससे अपनी उम्र जाननी चाही। ज्योतिषी ने पत्रा खोलकर सारी गणना की। गणना करने के बाद राजा से कहा कि राजन्! क्या बताऊँ, आपके सामने आपकी सात पीढ़ियाँ गुजर जायेंगी। राजा को बड़ा बुरा लगा। राजा ने उसे कारावास दे दिया। बोला यह ज्योतिषी ठीक नहीं बोलता। दूसरे ज्योतिषी को बुलाया गया। दूसरा ज्योतिषी ज्ञानी ही नहीं, अनुभवी भी था। विद्वान् टोटे में रह जाता है, अनुभवी टोटे में नहीं रहता। पण्डित होना अलग बात है और अनुभवी होना अलग है। पण्डित वह होता है जो केवल किताबी ज्ञान रखता है लेकिन ज्ञानी के साथ अनुभव भी जुड़ा रहता है।

उसने भी राजा के पत्रा को देखा और कहा- 'राजन्! आप तो बड़े पुण्यशाली हैं। आप जैसा योग तो विरले व्यक्तियों में होता है। लाखों-करोड़ों में एक ही होता है। जो आप जैसी आयु का योग पाता है। महाराज आपकी आयु तो इतनी लम्बी है कि अगर आपकी सात पीढ़ी की सन्तति की आयु भी जोड़ दें तो आपकी आयु की बराबरी नहीं कर सकते।'

राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। अपने गले का हार उसके गले में डाल दिया। एक को कारावास मिला और एक को हार मिला। बात दोनों ने एक ही कही थी। एक ने कहा कि आपके सामने-सामने आपकी सात पीढ़ी चली जायेगी। दूसरे ने कहा कि सात पीढ़ी की आयु मिलायें तो आपकी आयु की बराबरी नहीं होगी। अन्तर क्या आया? पहले वाले की बात पर राजा को खिन्नता क्यों आयी, क्षोभ क्यों आया? क्योंकि उसने मरने की बात की थी। बात सही की थी, लेकिन सही बात हजम कहाँ होती है। दूसरे ने भी वही बात की। उसने थोड़ा घुमाकर कह दी। वह जीने की बीत कह रहा है अतः बड़ी अच्छी लगी।

अपनी करनी आप ही भुगतो

अँगुलीमार का रोज का एक काम था निर्दोष प्राणियों को मारना। अनेक प्राणियों को मारना। उनकी एक-एक अँगुली काट कर माला बना लेना। एक बार जब बुद्ध उधर से गुजरे और जब अँगुलीमार ने बुद्ध को रुकने के लिए कहा तो बुद्ध ने कहा- 'मैं तो रुका ही हुआ हूँ, चल तो तुम रहे हो। तुम कब रुकोगे?' अँगुलीमार समझ नहीं सका। मुझे किस प्रकार रुकने की बात कर रहे हो। तुम तो खुद चल रहे हो और कहते हो- मैं तो रुका हुआ हूँ। फिर भी मुझसे कह रहे हो- तुम कब रुकोगे।

बुद्ध चलते हुए भी रुके हुए हूँ कह रहे हैं। बुद्ध इसे कह रहे हैं, तुम कब रुकोगे। अंगुलीमार ने पूछा आप कहना क्या चाह रहे हैं? मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। बुद्ध ने कहा- मैं तो पाप से रुक चुका हूँ, तुम कब रुकोगे? कब तक इस पापात्मक प्रवृत्ति में लगे रहोगे। तुम्हें मालूम है इस हिंसा का अंजाम क्या होगा? इस कार्य में तुम क्यों लगे हो? अँगुलीमार ने जबाव दिया कि आपको पता नहीं, मेरा नाम अँगुलीमार है। इस रास्ते से गुजरने वाले को लोग पहले ही बता दिया करते हैं कि मारना मेरा काम है। मेरा रोज का धन्धा है। उनको लूटना मेरा काम है। मैं प्रत्येक व्यक्ति की एक-एक अँगुली को काटकर के अपने गले की माला बना लेता हूँ। नीचे तक झूलती हुई माला को दिखाते हुए अँगुलीमार ने कहा।

बुद्ध ने सहज मुस्कान भरी मुद्रा में कहा- भाई! तुमने अपने और अपने परिवार के पालन के लिए जो मार्ग चुना है, यह बड़ा कष्टकर प्रतीत होता है। तुम अपने परिवार के पालन का दायित्व महसूस करते हो, लेकिन उसके लिए इस पाप को करना मुझे उचित नहीं लगता। तुम कहते हो- मैं अपने परिवार के लिए यह करता हूँ। तो मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ। कि जाओ अपने परिवार से पूँछ आओ कि तुम्हारे परिवार के लोग तुम्हारे द्वारा लूटी गयी सम्पत्ति के भोग में ही तैयार है, या तुम्हारे द्वारा जोड़े गये पाप को भी भोगने में तैयार हैं। जाओ मैं यहीं ठहरा हूँ। मैं कही जाऊँगा नहीं। एक बार अपने परिवार से पूँछकर तो आओ।

बुद्ध की तेजस्वी मुद्रा से अँगुलीमार प्रभावित हो गया। अपने परिवार के लोगों से पूछा कि कोई संत आये हैं, उन्होंने मुझसे प्रश्न किया कि तुम कहते हो कि तुम्हारा सारा परिवार है। तुम परिवार के लिए ही लूट-पाट, रक्तपात करते हो। इस लूट-पाट और रक्त-पात से अर्जित धन के भोग में ही तुम्हारे परिवार के लोग शामिल होंगे या तुम्हारे द्वारा अर्जित पाप में भी वे सहभागी होंगे? परिवार के सारे लोगों ने एक स्वर में कहा- आप हमारे परिवार के प्रमुख हैं, तो हमारा भरण-पोषण करना आपका दायित्व है। अब वह कैसे करें, आपकी जबावदारी है। हम तो केवल संपत्ति का उपभोग करेंगे, आपके पाप से हमारा क्या नाता। अँगुलीमार उलटे पाँव लौटा और बुद्ध के चरणों में गिरते हुए कहा, कि आप ठीक कहते हो। हमारे परिवार के लोग कहते हैं कि हम तो केवल आपकी सम्पत्ति को भोगने के हकदार हैं। आपके पाप से हमें क्या लेना-देना।

अँगुलीमार का स्वर एकदम बदल चुका था। तब बुद्ध ने उसे समझाया कि ऐसे पाप को करने में क्या फायदा। जिनके लिए तुम इस पाप को कर रहो हो, उसका फल तुम्हें अकेले भोगना होगा। अभी भी तुम सम्हल जाओ तो तुम्हारे जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन आ सकता है।

कहते हैं अँगुलीमार प्रबोधित हो गया उसी क्षण। अब तक का दस्यु अँगुलीमार महान संत बन गया।

अपने श्रृंगार के लिए
किसी का संहार मत करो।

आत्मबोध

बिजली नई-नई आई थी और एक व्यक्ति गाँव से मुम्बई गया, बिजली देखने के लिए। उसने एक युवक के पास जाकर जिज्ञासा प्रकट की। मैं बिजली देखने आया हूँ, बिजली दिखाओ। युवक ने कहा- देखो ये बल्ब जल रहा है, यह बिजली है। ये पंखा चल रहा है इसमें बिजली है। बोला- बेवकूफ मत बनाओ। ऐसा लट्टू तो मेरा लड़का भी नचाता है। और ये तीन पात का पंखा मुझे तो लोहे का पत्ती रूप दिखाई देता है। तुम मुझे बिजली बताओ। मैं इन सब बातों में विश्वास नहीं रखता। मुझे पता है शहर के लोग गाँव के लोगों को बेवकूफ बनाते हैं। मुझे तुम बिजली दिखाओ। युवक ने कहा- देखो, यह तार दिख रही है, इस तार के अन्दर बिजली है। उस व्यक्ति ने कहा- फिर बेबकूफ बनाया। इस तार पर तो रोज हम अपने कपड़े सुखाते हैं। यह तार तो ठोस है, इसके अन्दर बिजली कहाँ? मुझे तो बिजली बताओ? अब भला उसे बिजली कैसे बताई जा सकती है। वह युवक बहुत समझदार था। उसने उस व्यक्ति को बहुत समझाया। अगर तुम बिजली को जानना चाहते हो तो उसे देखकर नहीं पहचान सकते। बिजली को छूकर पहचाना जा सकता है। यदि तुम बिजली को देखना चाहते हो तो आओ मेरे साथ बिजली को छुओ। और वह उसे एक किनारे ले गया। वहाँ एक अर्थिंग के तार को टच करने को कहा। उसने जैसे ही उसे टच किया उसके शरीर में हल्का शॉक लगा। उसे यह बात समझ में आ गयी कि बिजली क्या है? यही हाल आत्मा का है उसे छूकर या बोलकर नहीं बताया जा सकता मात्र अनुभव किया जा सकता है।

संपत्ति नाशवान है,
वह स्थिर नहीं रहती,
अतः उसका सदुपयोग करें।

यूज़ करें, मिसयूज़ नहीं

यह शरीर कड़वी तुम्बी की तरह है, जो जहरीली होती है। उस तुम्बी को अगर खा लिया जाय तो फुड प्वाईजन हो जाता है। बड़ी भयानक स्थिति बन जाती है। अगर कोई खा ले, तो इतनी उल्टी और दस्त होती है कि हालत खराब हो जाय। कड़वी तुम्बी खाई नहीं जाती। लेकिन उस तुम्बी का सही ढंग से उपयोग करें तो उस तुम्बी के सहारे नदी-नाले को पार किया जा सकता है।

संत कहते हैं कि यह शरीर भी तुम्बी की तरह है। इसका तुम उपयोग करो, उपभोग नहीं। उपयोग करोगे तो तर जाओगे। उपभोग करोगे तो मर जाओगे। शरीर का सदुपयोग क्या है? भगवान् की भक्ति, दीन-दुखियों की सेवा, त्याग और तपस्या।

बर्तन तपाना अनिवार्य

एक भाई मेरे पास आये, बोले महाराज- आप लोग त्याग-तपस्या की बात करते हो। हमें समझ में नहीं आता। आप हमें कुछ शार्टकट बता दो, बड़ा कष्ट होता है आप लोगों की तपस्या देखकर। प्यास की वेदना सहना, इतनी त्याग-तपस्या करना, सर्दी-गर्मी की बाधा सहन करना, कोई दूसरा मार्ग बताओ। हम तो अध्यात्म की ऐसे ही साधना करना चाहते हैं। मैंने उनसे कहा- भाई साधना करना चाहते हो तो एक बात ध्यान रखना। बर्तन को तपाये बिना दूध को नहीं तपाया जा सकता। साधना बर्तन है, दूध साध्य है। ध्येय बर्तन को तपाने का नहीं, दूध को तपाने का है। लेकिन बर्तन के बगैर दूध न आज तक तपाया जा सका है और न तपाया जा सकेगा। बिना तपाये दूध की सुरक्षा भी नहीं हो सकती। यदि सुरक्षित रखना है तो उसे तपाओ। बस इतना ही ध्यान रखना है कि हमारा ध्येय दूध को तपाना है, बर्तन नहीं। यदि कोई खाली बर्तन तपाये तो उसकी यह नादानी है।

दूसरो के अनुभव से सीखो

मुझसे एक बार एक सज्जन कह रहे थे- महाराज! आपने दुनिया देखी नहीं, फिर ऐसी बातें कैसे करते हैं? मैं साठ बरस का हो गया। जो संसार का अनुभव आप नहीं कर पाये, आप बता देंते हो आपने कहाँ से पाया? हमने कहा- आप लोगों को देखकर।

जहर खाने वाला मर जाता है। यह हमने सुना है, अनुभव नहीं किया। कभी जहर खाके, मर के नहीं देखा। लेकिन सबको पता है कि जहर खाने वाला मरता है इसलिये दूसरों के अनुभव से भी बहुत कुछ सीखा जाता है।

नाटक में ना अटक

ईश्वरचन्द विद्यासागर एक नाटक देखने गये। नाटक बड़ा प्रभावी था। अचानक नाटक देखते-देखते उन्होंने देखा कि एक युवक एक युवती को बुरी तरह छेड़ रहा है, छेड़ते-छेड़ते बदतमीजी की हद से आगे बढ़ गया। ईश्वरचन्द विद्यासागर से रहा नहीं गया, अपने आसन से उठे मंच पर चढ़े और अपना जूता उतारकर पाँच-सात जूते उस युवक को मारे। सब लोग स्तब्ध रह गये कि यह क्या हो गया? लेकिन उस युवक ने उस जूते को बड़े प्रेम से उठाया और अपने सिर पर रखते हुए मंच पर आगे आकर उसने कहा- मैं बीस वर्षों से लगातार नाटक कर रहा हूँ। मुझे मेरे अभिनय के बल पर बड़े-बड़े सम्मान मिले, पुरस्कार मिले पर आज जैसा पुरस्कार मुझे नहीं मिला। ईश्वरचन्द विद्यासागर जैसे व्यक्ति के द्वारा, उन्होंने मुझे जो उपहार दिया, मतलब इन्होंने मेरे नाटक को सच मान लिया है और किसी भी कलाकार के लिये उसके अभिनय को सच मान लिया जाय, वही सर्वश्रेष्ठ अभिनय है, सबसे बड़ी सफलता है। कहते हैं- ईश्वरचन्द विद्यासागर बड़े शर्मिन्दा हुए। वे भूल गये कि मैं नाटक देख रहा हूँ। वस्तुतः लोग नाटक को नाटक की तरह नहीं देख पाते नाटक में अटक जाते हैं।

खोलो आँख विवेक की

एक जगह चार युवक इक्कट्ठे हुए, चारों ने मन बनाया कि चलो आज चाँदनी रात है, शरदपूर्णिमा की रात है, क्यों न इस रात में नौका विहार का लुफ्त उठाया जाए। नौकाविहार करने से पूर्व चारों ने जमकर भाँग पी। भाँग पीने के बाद चारों नौका पर सवार हो गये और चप्पू चलाना प्रारम्भ कर दिया। चारों के ऊपर भाँग का नशा बुरी तरह सवार हो गया। भांग का ही नशा नहीं था, उन पर यौवन का भी नशा हावी था और मौसम भी पूरी तरह साथ दे रहा था। तीनों नशे एक साथ उनके ऊपर छाये हुए थे। सुबह हुई देखा कि हमारी नाव एकदम किनारे पर आ गयी। एक युवक उतरा और कहा- देखो, हम तो पहुँच गए है। लेकिन जैसे ही अच्छे से देखा तो वह भौचक्का रह गया। यह क्या हुआ, देखते ही आँखें फटी की फटी रह गयीं। उनसे कहा- यह तो वही किनारा है, जहाँ से चलना शुरु किया था। अरे! रात भर हम चलते रहे पर जहाँ के तहाँ हैं। बड़ा गड़बड़ हो गया। दूसरा बोला- क्या बात कर रहे हो, रात भर चले और वहीं के वहीं रह गये। गलत बात है, अब क्या?

सभी उतरे, सुबह के प्रकाश में यह देखकर भौचक्के रह गये। उनका सारा नशा हवा के झोकों सा जाता रहा। लेकिन चारों के मन में एक प्रश्न उभर गया कि रातभर हम चले और हमारी नाव एक कदम भी आगे क्यों नहीं बढ़ी? बहुत माथापच्ची की कुछ समझ में नही आया। तभी देखते-देखते उनकी नजर नाव के लंगर पर गयी। अरे, यह बहुत बड़ी भूल हो गयी। हम नाव को खेते रहे परन्तु लंगर तो खोला ही नहीं। लंगर खोले बिना नाव आगे बढ़ेगी कैसे?

बस, यही स्थिति हमारे साथ भी है। जीवन की नैया को पार करना चाहते हो, तो अज्ञान के लंगर को खोलो। मोह के लंगर को खोलो। अगर मोह और अज्ञान के लंगर नहीं खोले, और तुम कितना भी चप्पू चलाते रहे, तुम्हारी नाव जहाँ की तहाँ ही रहेगी।

हिराय दयो हीरा

एक युवक अपने घर से निकलकर पड़ोस के गाँव के लिए रवाना हुआ। रात के अंधेरे में ही निकला, रास्ते में अचानक उसे ठोकर लगी। उसने देखा कोई पोटलीनुमा चीज वहाँ पड़ी थी। उसने उस पोटली को उठाया, वजनदार लगी। छूकर देखा तो उसे काँच की गोलियाँ जैसी लगीं। वह उन्हें लेकर आगे बढ़ा। रास्ते में नदी पड़ती थी। पानी ज्यादा था। नदी गहरी थी। उसे नाव से पार करना पड़ता था। नाविक अभी आया नहीं था। नाविक की प्रतीक्षा में वह तट पर बैठ गया। समय पार कर रहा था। उसके पास जो पोटली थी, वह उसे अच्छी लगी। उसने सोचा उसी पोटली की काँच की गोलियों से अपना समय बिताया जाए।

उस युवक ने उसमें से एक काँच की गोली निकाली और नदी में फैंकी। 'छपाक' की आवाज हुई, नदी के पानी में तरंग उत्पन्न हुई और उस तरंग से उसका मन भी तरंगित हो उठा, कुछ पल के लिए बड़ा आनन्दित हो उठा।

थोड़ी देर बाद दूसरी, तीसरी और चौथी करते-करते पूरी पोटली खाली हो गई। अन्तिम गोली उसके हाथ में आई, तब तक नाविक भी आ चुका था और प्रकाश भी फैल चुका था। उसने सोचा इन गोलियों ने मेरे समय को पास करने में काफी मदद की, ये गोलियाँ काफी अच्छी हैं। यह सोचकर जैसे ही उसकी नजर अपने हाथ की तरफ गई, उसने देखा यह क्या? अनर्थ हो गया। जिन गोलियों को काँच की गोलियाँ समझ रहा था वह तो हीरा है और व्यर्थ ही मैंने उन हीरों को पानी में बहा दिया। काश, वह पोटली मेरे हाथ में होती तो मेरा जीवन निहाल हो जाता। चलो, एक गोली है। इस एक गोली से ही मालामाल हुआ जा सकता है।

आपको उस व्यक्ति की नादानी पर हँसी आ रही होगी, लेकिन वस्तुतः किसी दूसरे पर हँसने जैसी बात नहीं है। यह उस व्यक्ति की नादानी नहीं वरन् हर उस व्यक्ति की नादानी है जो अपने जीवन के प्रति लापरवाह है।

ईश्वर दर्पण है

दर्शनशास्त्र के एक प्रोफेसर थी। उसने मुझसे कहा कि महाराज जी, आपके जैनियोंा की सब बातें बहुत अच्छी लगती हैं। लेकिन एक बात समझ में नहीं आती कि जैन लोग ईश्वर को तो मानते हैं किंतु ईश्वरकर्तृत्व को क्यों नहीं मानते? ईश्वर कुछ करता है, ऐसा क्यों नहीं मानते? देखिए ना, ईश्वर ने हम पर कितनी बड़ी कृपा की। मेरे पति की दोनो किड़नियां फैल हो गई थी। ईश्वर ने उन्हें ठीक कर दिया। मैंने कहा- मैडम, अगर आपकी बात सही है तो मुझे आपके ईश्वर पर संदेह है। मैंने पूछा- यदि आपके ईश्वर को किडनी ठीक ही करनी थी तो खराब क्यों की? ईश्वर को न खराब करनी थी, न ठीक करना पड़ती? उन्होंने दूसरा प्रश्न पूछा- महाराज जी, अगर यही बात है तो आपके यहाँ ईश्वर की उपासना क्यों? जब ईश्वर कुछ नहीं करता। हमारे भगवान न देते हैं, न लेते हैं तो ईश्वर की उपासना क्यों? मैंने उनसे पूछा- आप दर्पण देखती हैं? वह बोली- देखती हूँ। मैं बोला- क्यों देखती हो? वह बोली- चेहरे पर कोई दाग-धब्बा न रहे इसलिए। हम बोले- अच्छा, दर्पण आपके चेहरे के दाग-धब्बों को साफ कर देता है। वह बोली- नहीं महाराज, दर्पण हमारे चेहरे को साफ नहीं करता, दर्पण में हम अपने धब्बो को देखकर स्वयं अपने हाथों से साफ कर लेते हैं। मैंने कहा-बस यही भूमिका हमारे भगवान की है। भगवान वह दर्पण है जिसमें हम अपने अंदर के दाग-धब्बे देखते हैं और विशुद्धि से उसे साफ कर लेते हैं। अन्य किसी कारक और कर्ता की कोई आवश्यकता नहीं है।

वह अतीत में तुम जैसा ही
नन्हा बीज रहा होगा
जो आज विशाल वृक्ष है।

प्रार्थना शब्द से नहीं भाव से हो

एक बच्चा था, वह भगवान के मंदिर में जाया करता था। पाँच साल का बच्चा और पाँच सात मिनट तक कुछ न कुछ बुदबुदाया करता था। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या प्रार्थना करता है? एक दिन एक युवक ने उसे बुलाकर पूछा- अच्छा, यह बताओ कि इतनी देर तक तुम भगवान से क्या कहते हो। वह बोला- प्रार्थना करता हूँ। युवक बोला- तुम्हें प्रार्थना आती है? वह बोला- मुझे कोई प्रार्थना नहीं आती। फिर करते क्या हो? बोलता है- मैं भगवान के पास जाता हूँ और ए बी सी डी बोलना शुरू कर देता हूँ। ए से जेड तक। ए से जेड तक जब पूरे छब्बीस लैटर बोल देता हूँ तब भगवान से कहता हूँ कि दुनिया की जितनी प्रार्थनायें बनी हैं, इन्हीं लैटर से बनी हैं। अब मैंने सब तुम्हें सुना दिया अब तुम्हें जो पसंद हो अपने मन की प्रार्थना बना लेना और स्वीकार लेना। मेरे पास शब्द नहीं है, केवल भाव हैं।

विवेकानन्द की सकारात्मकता

विवेकानन्द जब विश्वधर्मसंसद के लिए भारत से बाहर गये। धर्मसंसद में विश्व के सभी धर्मों के ग्रन्थ रखे गये, जिसमें गीता को सबसे नीचे रखा गया था। एक आदमी ने विवेकानन्द जी को चिढ़ाने की कोशिश में कहा- देखो तुम्हारे ग्रन्थ को सबसे नीचे रख दिया। अगर सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो किसी को धर्म ग्रन्थ को एकदम नीचे स्तर पर रख देना अच्छी बात नहीं है। लेकिन जो साधक व्यक्ति होता है उसकी एप्रोच बिल्कुल अलग होती है। जब विवेकानन्द जी से ऐसा कहा गया कि आपके ग्रन्थ को सबसे नीचे रखा गया तो विवेकानन्द जी ने एकदम सहजता के साथ कहा- वह सबका फाउण्डेशन है। नहीं समझ में आया, थोड़ी देर में समझ में आया। विवेकानन्द जी ने कहा- यह सबका फाउण्डेशन है। जो सबका फाउण्डेशन होगा वही तो सबके नीचे रहेगा। यह पोजिटिव एप्रोच है।

परिणामों की विचित्रता

एक बार सम्राट श्रेणिक भगवान महावीर के समवशरण की ओर जा रहा था। रास्ते में उसे एक मुनिराज के दर्शन हुए। लेकिन वे मुनिराज बड़े क्रोध में थे। होंठ फड़फड़ा रहे थे। आँखें आरक्त थीं। हाथ-पांव कांप रहे थे। कोपाविष्ट, इतनी क्रुद्ध अवस्था को देखकर श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। भगवान महावीर के समवशरण में जाते ही उसने पूछा- भगवन्! मैंने एक मुनिराज के दर्शन किए है। वे बड़े क्रुद्ध और बड़े क्षुब्ध दिखाई पड़ रहे थे। आखिर वे किस कर्म का बंध करेंगे? तो भगवान ने अपनी देशना में कहा- श्रेणिक जिस समय तुम वहाँ से गुजर रहे थे उस समय वे तीव्र रौद्रध्यान में लीन थे। यदि अंतर्मुहूर्त तक वे ऐसे ही बने रहे तो सप्तम नरक की आयु के बंध के योग्य हो जायेंगे। इस समय उनके इतने दूषित भाव हैं। दरअसल, बात यह थी कि वे एक राजा थे और उन्होंने अपने बच्चे को अबोध अवस्था में राजतिलक करके ही संन्यास अंगीकार कर लिया था। संन्यास अंगीकार करने के बाद वे मुनि बन गये थे। उनकी अनुपस्थिति में मंत्रियों ने चालबाजी करके उनका सारा राज्य हड़प लिया। रानी और बेटे को निराश्रित कर दिया। वे ध्यान में बैठे थे। कुछ मनचले लोग उधर से निकले और उन्होंने कहा- यह क्या हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं। इनका सारा राज्य मंत्रियों ने हड़प लिया और पत्नी और बच्चे आज दर-दर दाने-दाने को मोहताज हो गये। ऐसा भी क्या साधु बनना? इतना सुनना था कि, इनके अंदर आग लग गई और ठान लिया कि मैं एक-एक को निपटाता हूँ और भाव इतने खराब हो गये कि सबकी हत्या उन्होंने विचारों से कर दी। तलवार निकालने को हुए कि मैं इनको मार दूँ। उसी समय सम्राट श्रेणिक वहाँ से गुजरा था, जिस समय उनके ऐसे भाव थे। भगवान उनके विषय में कह रहे हैं कि तुम जब वहाँ से गुजरे, तब वे तीव्र संरक्षणानंद नामक रौद्रध्यान में लीन थे। एकदम सुनिश्चित बात है। लेकिन यदि ऐसे ही भाव बने तो (कंडीशनल वाक्य है) संभावनात्मक कथन, सप्तम नरक की आयु के बंध के योग्य हो जायेंगे। भगवान की तो बात हुई। लेकिन श्रेणिक जब लौटे तो देखते क्या हैं? वहाँ तो

पाशा ही पलट गया। उन्हीं महाराज को केवलज्ञान हो गया और देवता केवलज्ञान कल्याणक का उत्सव मना रहे हैं। हुआ यह था कि, जब उनको गुस्सा आया था तब अपनी कमर से कटार निकालने को हुए। कटार निकालते समय उनको अपने माथे का मुकुट छूने का अभ्यास था, जैसे ही कटार के लिए कमर पर हाथ गया और मुकुट छूने के लिए सिर पर हाथ गया, तब उन्हें ख्याल आया कि कहाँ का कटार और कहाँ का मुकुट कहाँ का राजा और कहाँ का राज्य? राज्य के किस व्यामोह में उलझ गया। मेरा तो कोई है ही नहीं। देखो भाव कितने जल्दी गिरते हैं और कितनी जल्दी चढ़ते हैं। तुरन्त उनको घोर पश्चाताप हुआ और अपनी निन्दा आलोचना करना शुरू कर दी। एकदम सबसे अपना चित्त हटाकर आत्मा में डूबे सो सीधा केवलज्ञान हो गया। जो सातवें नरक में जाने योग्य था वह सिद्धालय में पहुँचने की भूमिका को पा गया। भगवान ने ऐसा क्यों नहीं कहा, क्या भगवान के ज्ञान में यह नहीं झलक रहा था? भगवान ने यह क्यों नहीं कहा- श्रेणिक तुम क्यों परेशान हो रहे हो? देखना जब तुम रास्ते में जाओगे तब तुम उनका केवलज्ञान कल्याणक देखोगे। तुमने अभी भावों के उतार-चढ़ाव को नहीं देखा। भगवान ने ऐसा नहीं कहा, इसका मतलब ये नहीं समझना है कि यह बात भगवान के ज्ञान में नहीं थी। भगवान का ज्ञान तो भगवान का ज्ञान है। पर भगवान ने हमें यह नहीं कहा- कि हमारे ज्ञान के अनुरूप तुम आश्रित हो जाओ। भगवान ने तो केवल यही कहा है कि जैसा करोगे वैसा भरोगे इसलिये अपनी प्रवृत्ति को बदलने की कोशिश करो। सावधानी और श्रद्धा से चलो।

दान दिए बिना सोना नहीं,
दान देकर रोना नहीं।

टिकटिकायें नहीं-टंकार करें

आपके हाथ में घड़ी है, आपकी घड़ी हर सेकण्ड में टिक-टिक, टिक-टिक कर रही है। आपका ध्यान कभी जाता है उस पर। हर सेकण्ड में घड़ी टिकटिकाती है और आपका ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता। कभी नहीं जाता और यदि आपके घर में अलार्म वाली घड़ी हो या पेण्डुलम वाली घड़ी हो और उससे एक घण्टे में टन्नननन से आवाज आती है तो कैसा होता है आपका ध्यान उधर चला जाता है। मैं आपसे इतना ही कहता हूँ बार-बार टोका-टाकी करके टिकटिकाइए मत। दस गलती होने पर एक बार सीधी टंकार कीजिए, तो आपका असर पड़ेगा।

संत कहते हैं, परिवार में सामंजस्य बनाकर रखना चाहते हो तो टिकटिकाओ मत, जब कोई बड़ी बात हो जाये तो एक टंकार लगाओ, टंकार को हर कोई सुनता है, टिंकार को कोई नहीं सुनता।

अन्याय का रक्त

महाभारत का एक प्रसंग है। जब भीष्म पितामह ने पांडवों को उपदेश दिया, उस समय द्रौपदी ने उनसे पूछा कि अब आप हमें इतना बड़ा उपदेश दे रहे हैं! उस समय आपका विवेक कहाँ चला गया था जब भरी सभा में मेरा चीरहरण किया जा रहा था? पितामह ने कहा कि द्रौपदी, उस समय मेरे रक्त में अन्याय और अनीति समायी हुई थी क्योंकि मैं अन्याय का अन्न खाता था। इसलिए मेरी बुद्धि कुंठित हो गई थी। आज मैं शरशय्या पर लेटा हुआ हूँ। इन बाणों के आघात से मेरा सारा दूषित रक्त बाहर हो गया है और उसका यह परिणाम है कि आज मेरे अंदर सद्‌बुद्धि जाग्रत हो गई इसलिए आज तुम्हें उपदेश दे रहा हूँ। विचार करें कितनी बड़ी बात कही गई, अन्याय का अन्न हम खायेंगे तो हमारा रक्त भी दूषित हो जावेगा।

गुण ग्रहण का भाव रहे नित

नीतिकारों ने दो प्रकार की वृत्ति कही है- एक मक्खी की वृत्ति, दूसरी भ्रमर की वृत्ति। मक्खी के सामने एक तरफ मिठाईयों का थाल रखा जाए, दूसरी तरफ विष्ठा का। वह मिठाई के थाल की उपेक्षा कर विष्ठा (मल) पर बैठना अधिक पंसद करती है, सुंदर सुवासित तेल और उत्तोमत्तम वस्त्र पर न बैठकर शरीर में फोड़ा हो तो वहाँ बैठना ज्यादा पसंद करती है यह मक्खी की वृत्ति है। दूसरी तरफ है भँवरे की वृत्ति। भँवरा फूल पर बैठकर उसका रस चूसता है, उसका मधु चूसता है, वह काँटे पर कभी भूलकर भी नहीं बैठता। बस यही वृत्ति है एक भले आदमी की और एक बुरे आदमी की। जो बुरा आदमी होता है वह दुनिया की बुराई देखता है। वह मक्खी की वृत्ति का होता है। वह सद्गुणों के थाल की उपेक्षा करके दुर्गुणों के मल पर बैठना अधिक पसंद करता है। लेकिन जिसके अंदर गुणानुरागी वृत्ति होती है वह भ्रमर की वृत्ति का होता है। जहाँ भी जाता है गुण ही गुण ग्रहण करता है।

जिस हवा से दिया बुझता है,
उसी से दावानल दहकता है।

दोष वादे च मौनं

एक बार ऐसा हुआ- तीन विद्वान इक्कट्ठे हुए, तीनों एक दूसरे को अपनी कमजोरी बताने लगे। बहुत कम होता है कि विद्वान विद्वान से मिले और अपनी कमजोरी व्यक्त करे। पहले ने कहा- ''क्या बताऊँ मैं बहुत अच्छा प्रवचन देता हूँ, लोग मुझसे बड़े प्रभावित होते हैं, पर मेरी एक कमजोरी है कि मैं जितनी अधिक त्याग की बात करता हूँ मेरे अंदर विलासिता के प्रति उतना ही राग बढ़ता जाता है, मेरा चित्त बहुत विलासी है। मैं भोग और वासना से अपने आप को बचा नहीं पाता। विलासिता से बच ही नहीं सकता, ये मेरी बहुत बड़ी कमजोरी है।'' दूसरे ने कहा- ''क्या बताऊँ मेरी भी एक बहुत बड़ी कमजोरी है। जब तक मुँह में तम्बाकू नहीं दबाता उपदेश देने का मूड ही नहीं बनता, और जब मैं तंबाकू दबाकर उपदेश देता हूँ तो सारी जनता को भाव विभोर कर देता हूँ।'' दोनों की बात को सुनकर तीसरा अपना पेट पकड़कर के जाने लगा तो दोनों ने कहा- ''भैया तुम कहाँ जा रहे हो?'' तीसरा बोला- ''ठहरो मैं अभी आता हूँ। वे बोले-ठहरो, तुम अपनी कमजोरी तो बताओ। वह बोला-अभी मैं आता हूँ। जब वह जाने ही लगा तो दोनों उसके पास पहुँचे और बोले-तुम अपनी कमजोरी तो बताओ। वह बोला-मेरी बस एक ही कमजोरी है, बहुत बड़ी कमजोरी है, जब मैं किसी मैं किसी की कमजोरी को सुनता हूँ तो उसे जब तक दूसरों को नहीं बताता तब तक मेरे पेट में दर्द होने लगता। मैं अभी सब को बताकर आ रहा हूँ, फिर सब बात समझना। अभी तो मेरे पेट में बड़ा तेज दर्द हो रहा है। आज व्यक्ति की स्थिति ऐसी हो गई है, किसी की कमजोरी सुन लेन के बाद जब तक उसे चार को सुना नहीं देता तब तक पेट में दर्द रहता है।

अर्थ के पीछे
अनर्थ मत करो।

विनय से आती विद्या

रामायण का एक प्रेरक प्रसंग है, जब रावण मरणासन्न था तो रामचंद्र जी ने लक्ष्मण से कहा कि 'लक्ष्मण रावण बहुत बड़ा नीतिज्ञ रहा है, जाओ उससे तुम कुछ ग्रहण करो, कुछ नीतियाँ सीख लो।'' लक्ष्मण जी एकदम बौखला गये कि ''भैया आप यह क्या कह रहे हो? उस अभिमानी रावण के पास कोई गुण होगा जो मैं उससे लेने जाऊँ!''

रामचंद्र जी ने समझाया- ''लक्ष्मण, अब वह अभिमानी नहीं और अब वह हमारा शत्रु भी नहीं। अब तो वह नीतिनिपुण और मरणासन्न राजा है। जाओ तुम उससे गुण ग्रहण करके आओ।'' इतनी उदार दृष्टि थी रामचंद्र जी की। राजचंद्र जी के कहने पर लक्ष्मण गये और रावण के सिर के पास खड़े होकर बोले कि ''भैया कहते हैं, तुम्हारे पास बहुत गुण हैं, मुझे दे जाओ मैं तुमसे लेने आया हूँ, अब तुम्हें तो यहाँ से जाना ही है।'' अकड़कर जब लक्ष्मण ने कहा तो रावण ने उसकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। लक्ष्मण लौट आये और बोले- ''भैया! मैंने पहले कहा था रस्सी जल जाती है पर उसकी ऐंठ नहीं जाती। वह अभिमानी, गुण बताने की बात तो दूर मेरी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। '' रामचंद्र जी ने कहा- ''लक्ष्मण! भूलते हो अभिमानी वह नहीं, अभिमानी तुम हो। अगर किसी से कुछ ग्रहण करना है तो शिष्य बनकर जाओ, विजेता बनकर नहीं।'' लक्ष्मण को बात समझ में आ गई। इस बार लक्ष्मण रावण के चरणों में पहुँचे और उनसे कहा- '' भैया श्रीराम ने आपके पास मुझे भेजा है, आप इस स्थिति में मुझे सारी नीतियों का ज्ञान दीजिये जो मेरे काम में आयेंगी।'' इस बार रावण ने निःसंकोच अपनी सारी नीतियाँ दे दीं।

परिस्थिति नहीं -
मनः स्थिति बदलें।

देवकी का मातृत्व

देवकी के श्रीकृष्ण से पहले छः पुत्र और उत्पन्न हुए थे, कंस उन्हें मार न डाले इस भय से उन्हें छलपूर्वक बाहर निकाल दिया जाता था और कह दिया जाता था कि मेरे मरे पुत्र उत्पन्न हुआ है। उन छहों के छहों पुत्रों का पालन भद्दिलपुर-विदिशा में हुआ था। एक बार समवशरण में भगवान नेमिनाथ के दर्शन से उन्हें वैराग्य हो गया। छहों दीक्षित हो गये। देवकी को इसका कोई अता-पता नहीं था कि छहों चारण ऋद्धिधारी मुनिराज हो गये। एक दिन देवकी पड़गाहन के लिए खड़ी थी, अतिथि-सत्कार के लिए खड़ी थी कि दो युगल मुनिराज उनके आँगन में आये। देवकी ने भक्तिपूर्वक उनका विधिपूर्वक पड़गाहन किया, आहार दिया। लेकिन उन्हें देखते ही उसके स्तनों से दूध उमड़ने लगा, उसका मातृत्व उमड़ने लगा, वह समझ नहीं पा रही थी कि मुनिराज को देखकर मेरे मन में इतनी ममता क्यों उमड़ने लगी है। भक्तिभावों से महाराजों को आहार दिया। महाराज वहाँ से चले गये। थोड़ी देर बाद दो मुनिराज फिर से आये। उनकी आकृति पहले वाले मुनि युगल जैसी थी। देवकी को बड़ा आश्चर्य हुआ उसे लगा कि कहीं फिर से वे ही मुनिराज तो नहीं आ गये। पर बिना तर्क-वितर्क के उसने मुनिराजों का पड़गाहन किया और आहार दिया। इस बार भी देवकी का मातृत्व उमड़ रहा था। दोनों मुनिराज आहार करके निकले ही थे कि थोड़ी देर बाद वैसी ही आकृति के दो मुनिराज फिर से आये। देवकी ने पड़गाहन किया, अब की बार तो देवकी के स्तनों की दूध की धार उसके वस्त्र फाड़कर निकलने लगी।

देवकी कुछ समझ नहीं पा रही थी। उसने आहार दिया। आहार ग्रहण कर मुनिराज चले गये। देवकी भगवान के समवशरण में पहुँची और उसने कहा कि "प्रभु आज मैंने ये क्या देखा, मेरे यहाँ एक ही महाराज तीन बार आएँ। आहार लेते उन्हें देखकर मेरे स्तनों में दूध उमड़ने लगा। आखिर बात क्या है?" भगवान ने उन्हें समझाया कि "देवकी! मुनिराज तो एक ही बार आहार करने आते हैं। वे जो मुनिराज तुम्हारे यहाँ आये थे, वे छहों तुम्हारे ही पुत्र थे। जन्म के बाद सें ही वे तुमसे दूर हो गये थे, आज उन पुत्रों को अचानक देखने के कारण ही तुम्हारा मातृत्व उमड़ा है। वे छहों एक से थे, इसलिए तुम्हें लगा कि एक ही मुनिराज तीन बार तुम्हारे यहाँ आये हैं।"

माँ की ममता

भगवान महावीर जन्म से तीन ज्ञान के धारक थे। उन्हें गर्भ में ज्ञान हुआ कि मैं गर्भ में हूँ, गर्भ के हलन चलन से मेरी माँ को पीड़ा होगी तो अपनी माँ को पीड़ा-मुक्त करने की भावना से उन्होंने हलन-चलन बंद कर दिया। इधर गर्भ-धारण के बाद अनेक प्रकार के गीत गाये जा रहे थे, धार्मिक वातावरण चल रहा था, लेकिन जैसे ही गर्भ में रहने वाले शिशु का हलन-चलन बंद हुआ, माता एकदम घबरा गई उसने सबको रोकते हुए कहा- ''यह क्या हुआ, कहीं गर्भ को कोई खतरा तो नहीं हो गया! कहीं गर्भ गिर न जाय!'' वह एकदम व्याकुल हो गई। तब भगवान के उस गर्भस्थ जीव को लगा कि यह तो उल्टा हो गया। कितनी ममता हैं मेरी माँ की! यह तो उल्टा हो गया। मैंने तो सोचा था कि कोई तकलीफ न हो, पर वह तकलीफ न देने से खुद तकलीफ पा रही है। यह है माँ का मातृत्व, यह है माँ की ममता।

भीष्म प्रतिज्ञा

जब राजा शांतनु ने एक नाविक की कन्या से विवाह करना चाहा, तो नाविक ने उनसे इस शर्त पर इंकार किया कि पुत्री का तुमसे विवाह हो भी गया तो राजगद्दी पर तो भीष्म ही बैठेगा। भीष्म पितामह ने कहा- ''मैं नहीं बैठूंगा।'' नाविक ने कहा कि ''तुम नहीं बैठोगे ठीक है, लेकिन तुम्हारी संतान तो गद्दी पर बैठेगी।'' तो भीष्म ने कहा- ''नहीं मेरी संतान भी राजगद्दी पर नहीं बैठेगी और मेरी संतान तो उत्पन्न ही नहीं होगी। आज से ही मैं आजीवन ब्रह्मचर्य के व्रत की घोषणा करता हूँ।'' अपने पिता की खुशी के लिए कितना बड़ा त्याग था।

आज्ञाकारी पुत्र : श्री राम

राम और लक्ष्मण, जिन्होंने अपने पिता की प्रतिष्ठा में सब कुछ दांव पर लगा दिया, अपने पिता के प्रण को पूरा करने के लिए जिन्होंने वनवास भी स्वीकार कर लिया। उनसे कहा नहीं गया अपितु उन्होंने वनवास स्वीकार कर लिया इसलिए स्वीकार लिया कि वनवास जाए बिना भरत गद्दी पर नहीं बैठेगा और भरत राजा नहीं बनता तो पिता का प्रण अधूरा रहेगा। पुत्र का तो यही कर्तव्य है कि अपने पिता के प्रण और प्रतिष्ठा को कायम रखे इसलिए वह अपने आप वनवास की ओर चले गये। वाल्मीकि रामायण में कहा है जब श्री राम से पूछा गया कि आप वनवास को क्यों स्वीकार रहे हैं, तो रामचन्द्र जी कहते हैं कि तुम वनवास की बात करते हो,

अहं हि वचनात् राज्ञः पातेयमपि पावके।
भक्ष्येयं विषं तीक्ष्णं पातेयमपि चार्णवे॥

मैं तो अपने पिता की आज्ञा के पालन के लिये अग्नि में कूदने को तैयार हूँ। विष के भक्षण को तैयार हूँ और समुद्र में छलांग लगाने में मुझे कोई संकोच नहीं है, यदि मेरे पिता का प्रण पूरा होता है।

समय का अभाव
उनके पास नहीं होता जो व्यस्त हैं,
अपितु उनके पास होता है
जो अस्त-व्यस्त हैं।

ढाई अक्षर का 'यत्न'

एक दिन भगवान महावीर से गौतम स्वामी ने पूछा- ''भगवन्! हम कैसे चलें, कैसी चेष्टा करें, कैसे बैठें, कैसे सोचें, कैसे बोलें, कैसे खायें जिससे कि पाप से बच जाएँ।''

कधं चरें कधं चिट्ठे कधमासे कधं सये।
कधं भासेज्ज भुंजेज्ज एवं पावं ण वज्झई॥

जीवन से जुड़ा हुआ बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है ये। इस प्रश्न का अर्थ समझकर आत्मसात करना ही धर्म का सार है। इतना बड़ा प्रश्न! अपेक्षा रही होगी बहुत बड़े उत्तर की, पर भगवान ने इतने बड़े प्रश्न का इतना सीधा सरल और संक्षिप्त समाधान दिया कि सब दंग रह गये। प्रश्न में ही थोड़ा संशोधन करके समाधान दे दिया। भगवान ने कहा- गौतम-

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये।
जदं भासेज्ज भुंसेज्ज एवं पावं ण वज्झई।

तुम अपने आप को पाप से बचाना चाहते हो तो यत्नपूर्वक चलो, यत्नपूर्वक चेष्टा करो, यत्नपूर्वक बैठो, यत्नपूर्वक सोओ, यत्नपूर्वक खाओ। तुम्हारी हर क्रिया यदि यत्न से हो तो पाप से बच सकते हो। बड़ा कमाल का शब्द है 'यत्न'।

संपत्ति नाशवान है,
वह स्थिर नहीं रहती,
अतः उसका सदुपयोग करें।

तमिलनाडू का जैन इतिहास

एक राजा था जो बड़ा दुराचारी था। कुल और कर्म दोनों से नीच था। उसने एक जैन कन्या से शादी करने की इच्छा की और जैनियों के पास अपना आदेश भिजवाया कि "मैं किसी जैन कन्या से शादी करना चाहता हूँ।" पूरे के पूरे जैनियों में खलबली मच गई कि क्या किया जाए? पर वो कायर नहीं थे। महावीर की संतान थे, वह डरे नहीं। उन्होंने राजा को खबर दे दी कि अमुक स्थान पर आ जाइये, आपको एक 'बाला' मिल जायेगी। आप उससे विवाह कर लेना। तो राजा तो उतावला हो रहा था, निश्चित तिथि को निर्धारित स्थान पर वह पहुँचा। वहाँ देखा तो बिलकुल सुनसान था। एक भी आदमी नहीं था। राजा तो मन में सोचकर गया था कि राजा की शादी है, बड़ा ठाठ-बाट होगा। बड़े गाजे-बाजे होंगे। बहुत सज्जा-सजावट होगी, पर वहाँ कुछ भी नहीं, एक भी आदमी नहीं। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ।

नगर की सीमा से बाहर एक कुटिया को निर्धारित किया गया था। राजा कुटिया के पास पहुँचा, वहाँ कोई कन्या तो नहीं एक कुतिया मिली। राजा आग-बबूला हो गया। उसकी आँखें लाल हो गई। तभी उसने देखा कि कुतिया के गले में एक चिट लगी थी। उसमें लिखा था- "कोई भी जैन बाला आपसे शादी करने को तैयार नहीं है, इसलिए आप मुझसे ही संतुष्ट रहें।" अब तो राजा का क्रोध सातवें आसमान को छूने लगा। सोचो राजा के साथ यदि ऐसा व्यवहार हो तो वह क्या कर सकता है और फिर जो विचारों से नीच हों। उसने जैन धर्म को राष्ट्रद्रोह घोषित कर दिया और फरमान जारी कर दिया कि आज के बाद कोई भी जैनी इस राज्य में नहीं रहेगा। रात्रि-भोजन का त्याग, पानी छानना, देवदर्शन करने को राजकीय अपराध घोषित कर दिया। हजारों जैनों को एक रात में कत्ल करवा दिया। बहुत से जैनी अजैन बन गये, कुछ जैनी ऐसे थे जो छिप-छिप कर अपने जैनत्व को बचाये रखे। कुछ तमिलनाडु से कर्नाटक की ओर भाग आये। कुछ जैनी ऐसे थे जो दबाव में आकर अजैन हो गये थे, पर उनका संस्कार नष्ट नहीं हुआ था। एक दिन एक जैन भाई तालाब से पानी छान रहा था, तभी राजा

के सिपाहियों ने उन्हें देख लिया और बंदी बनाकर राजा के पास पेश किया गया। संयोग कुछ ऐसा था कि उस दिन राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ था। पुत्रोत्पत्ति की खुशी में उस दिन क्षमादान दे दिया गया। लेकिन जैसे ही उन्हें क्षमादान दिया गया उनके अंदर का स्वाभिमान जाग गया। उनके मन में आया कि कब तक ऐसे छिपकर धर्म का पालन करूँगा? धर्म छिपकर के पालन करने की चीज नहीं है, धर्म तो खुले आम जीने की चीज है। उनका मन अंदर से कचोटने लगा, उन्होंने कहा कि अब मुझे धर्म का फिर से प्रवर्तन करना चाहिए। इस तरह से छिप-छिप कर करने से तो धर्म का पूरी तरह नाश हो जायेगा। वह वहाँ से चलकर सीधे श्रवणबेलगोल पहुँचे।

वहाँ पर जैन मुनियों का हमेशा सद्भाव रहता था। वहाँ का राजा भी जैन था। वहाँ उन्हें संरक्षण मिला। वहाँ जाकर के उन्होंने गूढ़ अध्ययन किया, दीक्षा ली और दीक्षा लेने के बाद उनका नाम वीरसेन पड़ा। वह वहाँ से सीधे निकले, उन्होंने कहा कि मैं तमिलनाडु में जाकर जैन धर्म का प्रवर्तन करूँगा और उन्होंने नियम ले लिया कि प्रतिदिन सौ व्यक्तियों को जैन बनाने के बाद ही आहार ग्रहण करूँगा। तमिलनाडु में वह आये, जहाँ जाते सौ व्यक्तियों को जैन बनाते फिर वह आहार करते। ऐसा करने में उनको कई-कई दिन निराहार रहना पड़ता था लेकिन फिर भी वे अपने आप में दृढ़ थे। पूरे के पूरे तमिलनाडु में जाकर उन्होंने तहलका मचा दिया। सारे लोगों को जो अजैन हो गये थे उन्हें फिर से जैन बनाया। आज तमिलनाडु में लगभग 200 स्थानों में जैनी हैं, वे तमिल के जैनी कहलाते हैं, दो सौ स्थान मात्र रह गये। एक समय था जब तमिलनाडु में जैन धर्म राजधर्म था। आज बहुत थोड़े बचे हुए हैं पर जितने भी बचे हैं वह आचार्य वीरसेन की देन है। उन्होंने इतना बड़ा त्याग किया और उस विषम परिस्थिति में भी अपने जैनत्व को सुरक्षित रखा। आज आप जाओगे तो तमिलनाडु में तमिल के अनेक जैन आपको मिलेंगे।

जल एक - रूप अनेक

हम जैसे लोगों के बीच रहते हैं, हमारा जीवन भी वैसा बन जाता है। जीवन को जल की तरह कहा गया है। जल का अपना कोई रंग नहीं होता, उसमें जो रंग मिला दो उसका रंग वैसा ही बन जाता है। एक ही जल जब केले पर गिरता है वह कपूर बन जाता है, वही जल की बूँद अगर साँप के मुँह में जाती है तो जहर बन जाती है, किसी फूल पर गिरता है तो पूरे वातावरण में महक घोल देता है और वही जल की बूँद जब गर्म तवे पर गिरती है तो वहीं के वहीं नष्ट हो जाती है। जल की बूँद ने अलग-अलग संसर्ग पाया तो उसका अलग-अलग परिणाम निकला।

बोओगे सो काटोगे

एक व्यक्ति ने बबूल का पेड़ लगाया, वह रात दिन उसके रख-रखाव में लगा रहता। पूरा समय उसके विकास में लगाता। लोग उसकी इस प्रवृत्ति को देखकर हँसते। एक दिन एक व्यक्ति ने उससे कहा कि भाई तुम इस बबूल के कटीले पेड़ के लिए इतना श्रम क्यों कर रहे हो? उसने जबाब दिया, ''तुम्हें क्या पता थोड़े दिन रुको, इसमें बहुत मीठे-मीठे आम लगने वाले हैं।'' वह आदमी उसकी बात को सुनकर हँसकर रह गया। बबूल के पेड़ को कितना भी सींचा जाए उसमें आम के फल नहीं लग सकते। हमारे यहाँ बहुत पहले कहा गया है ''जैसा बोओगे वैसा काटोगे'' बबूल के बीज बोकर आम के फल खाने की सोचना हमारी नादानी है। जो व्यक्ति जैसा बोता है वैसा ही उसे काटने को मिलता है।

बिना विचारे जो करे

एक घर में एक नेवला पलता था। घर के सभी लोग नेवले को बहुत अधिक प्यार किया करते थे, वह परिवार के सदस्य की तरह रहता था। घर में कोई ज्यादा लोग नहीं थे, माँ थी, उसका एक छोटा-सा दूध पीता बेटा था और एक नेवला। एक दिन माँ बेटे को सुला कर पानी भरने के लिए नदी के किनारे पहुँची और इधर न जाने कहाँ से घर में एक साँप आ गया और वह बेटे के बिस्तर की ओर बढ़ने लगा। नेवले ने जैसे ही ये स्थिति देखी, वह एकदम छलांग लगाकर साँप पर छपट पड़ा। उसने साँप की जीवन-लीला समाप्त कर दी। बेटे की रक्षा हो गई, नहीं तो साँप तो बेटे को डँसने ही वाला था और इस खुशी में कि अब माँ आयेगी तो मुझे कुछ शाबाशी देगी, वह दरवाजे पर खड़ा होकर माँ का इंतजार करने लगा। इधर माँ पानी भरकर के आ रही थी। उसने नेवले का मुँह खून से सना हुआ देखा, तो उसने सोचा मेरे सूनेपन में इसने मेरे बेटे से जरूर छेड़छाड़ की है इसलिये इसके मुँह में खून है और उसने अपना सारा विवेक खो दिया, क्रोध के साथ आवेश भी आया और उसकी मानसिक स्थिति आक्रोश में बदल गई, फलतः जो घड़ा वह भर कर लाई थी, वही घड़ा उस पर पटक दिया, नेवला लहूलुहान हो गया और फिर जल्दी जल्दी से अपने बेटे को देखने के लिए गई कि बेटे कि स्थिति क्या है तो बेटे को सुख से खेलते देख वहीं पर मरे हुए साँप को देखा तो उसे सब कुछ समझ में आ गया, उसे अपने किए पर बहुत पश्चाताप हुआ, ''लेकिन अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।'' उतावली, व्यक्ति को विवेकशून्य कर देती है।

परिस्थितियों के आगे
मजबूर नहीं मजबूत बनो।

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं

एक ऋषि गंगा-स्नान करके लौट रहे थे। उन्होंने देखा, सामने से एक चांडालिनी आ रही थी। उसके एक हाथ में गंदगी से भरा खप्पर था। सिर पर एक टोकनी थी जिसमें मरा हुआ कुत्ता था। दूसरा हाथ खून से लथपथ था। वह अपने रक्त-सने हाथों से गंगा का जल सींचते हुए जा रही थी। ऋषि को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या! उन्होंने उस चांडालनी से पूछा- बहिन, मैं यह क्या देख रहा हूँ तेरे एक हाथ में खप्पर है उसमें गंदगी है, सिर पर जो टोकना है उसमें मरा हुआ कुत्ता है और तेरे हाथ खून से लथपथ हैं, फिर तू गंगा का जल क्यों सींचते जा रही है? तू कौन-सी पवित्रता पाना चाहती? तो चांडालनी ने जो जवाब दिया वो आप सब लोगों को नोट करने लायक है। उसने कहा कि '' हे महाराज! आप तो भोले-भाले हैं। आपको दुनियाँ का कोई पता नहीं। मैं अपना कर्म करती हूँ इसलिए मैं इतनी अपवित्र नहीं हूँ। मुझसे भी अपवित्र कोई है, मैं उस अपवित्रता की छाया से अपने को बचाना चाहती हूँ।'' ''क्यों क्या बात है? '' ''बात इतनी है कि अभी-अभी इस धरती से एक कृतघ्नी निकला है, मैं नहीं चाहती कि उसकी अपवित्र धूल मेरे पैरों मे ं लगे, इसीलिए मैं गंगा-जल सींच-सींच कर आगे जा रही हूँ।''

इर्ष्या हमारे जीवन के आन्तरिक ऐश्वर्य को लील जाती है।

शेर का कांटा

यूनान की एक घटना है जब दास-प्रथा प्रचलित थी, आप लोगों ने सुना होगा। डायजनिस की कथा है। डायजनिस एक दास था, गुलाम था । अपनी गुलामी से तंग आकर के एक दिन वो भागा। पीछे-पीछे सैनिक उसका पीछा कर रहे थे। भागता-भागता वह जंगल में पहुँचा। देखता क्या है, एक झाड़ी के नीचे एक शेर कराह रहा था। उसने शेर को देखा तो पहले तो घबराया, फिर शेर की कराह को सुनकर उसके अंदर करुणा उमड़ आयी। सारा भय त्यागकर वह शेर के सामने पहुँच गया। जैसे ही शेर के सामने पहुँचा, शेर ने अपना पंजा उसकी ओर कर दिया। उसके पंजे में एक तीखा शूल चुभा हुआ था। उससे शेर को बहुत पीड़ा हो रही थी। शेर इसी पीड़ा में कराह रहा था। उसने उसकी स्थिति देखी तो समझ गया कि शेर मुझसे सहयोग चाहता है। उसने सब कुछ भूल कर उसके उस शूल को बाहर कर दिया। जैसे ही शूल को बाहर किया, शेर की पीड़ा कम हो गई। उसने उसकी तरफ कृतज्ञता भरी नजरों से देखा और चुपचाप अपना रास्ता पार कर लिया। कहते हैं, कुछ दिन बाद वह डायजनिस पकड़ा गया और उसे सजा में यह कहा गया कि इसे भूखे शेर के पास छोड़ दिया जाये, भूखा शेर इसे खा लेगा। उसे प्राण दण्ड दे दिया गया। बीच चौराहे में उसे सजा देने के लिए एक पिंजरे में तीन दिन के भूखे शेर को लाया गया और उसे पिंजरे में धकेल दिया गया। पहले तो शेर जोर से दहाड़ा, पर जैसे ही वह पास आया उसकी गंध शेर तक पहुँची। शेर बिल्कुल शांत हो गया। बहुत प्रयत्न किया गया कि किसी तरह से शेर उसका भक्षण कर ले। पर शेर ने उसे सूँघा, उसकी परिक्रमा लगायी और अपने स्थान पर आकर बैठ गया। भूखे रहने के बाद भी शेर ने उसका भक्षण नहीं किया क्योंकि शेर को मालूम पड़ गया था कि यह वही डायजनिस है जिसने मेरे पैर का काँटा निकाला था।

रायचन्द्र की तीन बातें

श्रीमद् रायचंद्रजी हुए, गृहस्थ होने के बाद भी वो बहुत बड़े साधक थे। वह कहा करते थे, मनुष्य को तीन बातें हमेशा याद रखना चाहिए (1) काल सिर पर सवार है, (2) कदम-कदम पर पाप लगता है और (3) आँख खोलते ही जहर चढ़ता है।

बड़ी गहरी भावनाएँ छुपी हुई हैं इसमें। अगर आदमी इन तीन बातों का हमेशा ध्यान रखे तो अनर्थ से बच सकता है। कभी भी हमारी मृत्यु हो सकती है। एक-एक कदम पर हमसे पाप होता है, प्रत्येक कदम गर्त में ले जाने वाला है और विषयों की तरफ तुमने देखा कि उनका विष व्याप्त हो गया। विषयों की आसक्ति से बचना चाहते हो तो यह समझो कि उनमें जहर है। भले ही जहर मीठा हो पर जहर तो जहर ही होता है। ऐसा भय जाग्रत हो जाए तो आसक्ति नहीं होती।

अपेक्षा लगाना जरूरी

शिक्षक ने बोर्ड पर लकीर खींची और छात्रों से कहा- ''इस लकीर को बिना मिटाये छोटी करो। सभी छात्र अचरज में पड़ गये पर एक बुद्धिमान छात्र उठा और लकीर के ऊपर एक बड़ी लकीर खींच दिया। लकीर अपने आप छोटी हो गई। शिक्षक ने पुनः कहा-अब इस लकीर को पुनः बड़ी करो, पर शर्त है- चौक का प्रयोग नहीं हो।'' वही छात्र फिर उठा और उस लकीर के नीचे उसने एक छोटी लकीर खींच दी। वह लकीर पुनः बड़ी दिखने लगी।

एक लकीर किसी की अपेक्षा से बड़ी है, तो वही छोटी भी है। अपेक्षा के इसी शब्द विज्ञान से अनेकांत का जन्म हुआ है। भगवान् महावीर कहते हैं कि वस्तु की व्यापकता को समझो, विभिन्न अपेक्षाओं को समझो, मात्र अपनी बात का आग्रह मत रखों, दूसरों की अपेक्षा का भी ध्यान रखो।

संवेदनशील बनें

महावीर अपनी माता त्रिशला के साथ राजोद्यान में टहल रहे थे। उद्यान के बीच में हरी दूब का एक बड़ा सा गोलाकार मंडल था। उसके बीच में संगमरमर का एक क्रीड़ा पर्वत था। जगह-जगह फब्बारे छूट रहे थे। महावीर चुपचाप पेड़-पौधों, फूलों की शोभा को निहारते हुये आगे चले जा रहे थे।

माता त्रिशला अपने परिकर के साथ विचरती हुई हरी दूब के विस्तृत मंडल में बिहार करने लगी। वे गर्मी की सन्ध्या में नंगे पैरों से उस पर चलकर भीगीं दूब का शीतल सुख पाना चाहती थी। महावीर मंडल के बाहर खड़े-खड़े उन सबको ताकते रह गये। माँ के बहुत पुकारने के बाद भी उन्होंने दूब के आंगन में पैर नहीं बड़ाया। माँ से रहा नहीं गया। आप ही दौड़ी आई और बेटे को अपने से सटाकर बोली- 'यहां क्यो खड़ा रह गया, बेटा! चल न भीतर, देख तो दूब कैसी शीतल और कोमल है और देख तो वे फब्बारे।' महावीर चुप रहें। बोले नहीं। माँ ने बेटे के गाल और बाल सहला कर पूछा अरे चुप क्यो है, तभी देखा महावीर के गाल गीले हैं।

माँ ने पूछा बेटा तुझे यह क्या हो गया?

महावीर ने भोलेपन से जबाब दिया- तुम सब इस नन्ही कोमल दूब को रौंदती हुई चलती हो न, तो हमकों बहुत दुख लगता है। लगता है हमारे ऊपर ही तुम सब चल रही हो। हमारी सारी पीठ छिल गई हैँ। माँ ने पीठ सहलाते हुए देखा तो जगह जगह पैरो के निशान पड़े थे। ऐसा लगा जैसे अभी-अभी रक्त छलक आएगा। माँ एकदम भौचक्क रह गई।

यह थी भगवान् महावीर की संवेदना। इसी संवेदना ने उन्हें अहिंसा की प्रति मूर्ति बना दिया।

महत्वपूर्ण जन्म नहीं जीवन है।

परिस्थिति प्रतिकूल - व्याख्या अनुकूल

एक बार पण्डित जगनमोहनलाल जी कटनी वालों ने एक घटना सुनाई। घटना उस समय की है जब देश में साम्प्रदायिकता की भावना चरम पर थी। घटना-रीवा (म.प्र.) की है। साम्प्रदायिकता में अन्धे लोग जैन तीर्थंकर के विमान को निकालने का विरोध किया करते थे। एक बार सम्पूर्ण जैन समाज ने श्री महावीर जयन्ती पर सामूहिक रूप से विमानोत्सव मनाने का निर्णय लिया। रीवा-नरेश ने भी अनुमति दे दी। लेकिन विरोधी लोगों ने राजाज्ञा का विरोध न कर पाने पर निर्णय लिया कि उसके विरोध में हम सभी अपनी दुकानें बन्द रखेंगे।

भगवान् महावीर का विमान निकला लेकिन पूरा बाजार बन्द था। स्थिति विपरीत थी। एक विद्वान् की हैसियत से पं. जगनमोहनलाल जी आमंत्रित थे। जब वे भाषण देने को खड़े हुए तो उन्होंने भगवान् महावीर के अनेकान्तमय दृष्टिकोण की व्याख्या शुरू की और भाषण के समय कुछ इस तरीके से बात शुरू की कि- आज भगवान् महावीर की जयन्ती तो सारे देश में मनायी जाती है और सिर्फ जैन लोग अपने प्रतिष्ठान बन्द करके उसे धूमधाम से मनाते हैं। लेकिन यह देश का पहला शहर है जहाँ भगवान् महावीर की जयन्ती में रीवा के जैन, अजैन सभी सम्मिलित हो गये और सभी ने अपनी दुकानें और प्रतिष्ठान बन्द कर लिए हैं। लोगों ने सोचा-अरे! इन्होंने तो इसे उल्टा ही ले लिया। सबने अपनी दुकानें फटाफट खोल लीं। बात बन गई। स्थिति विपरीत होने पर, परिस्थिति के प्रति अपना दृष्टिकोण बदला जा सकता है। जीवन हमारे नजरिये पर निर्भर करता है। जिसने अपने नजरिये को बदलने की कला सीख ली, वह सबसे ज्यादा सुखी रहता है।

महत्वपूर्ण यह नहीं कि हम कितना जिए,
महत्वपूर्ण यह है कि हम कैसे जिए।

विचारों में हिंसा का प्रभाव

भाव हिंसा के संदर्भ में तन्दुल मत्स्य का उदाहरण आता है। जैन शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि-स्वयम्भूरमण समुद्र में हजार-हजार योजन के महामत्स्य होते हैं। जब वे सोते हैं तब उनका मुँह खुला रहता है। उस समय जब वे श्वास लेते हैं तो हजारों मछलियाँ उनके पेट में श्वास के साथ खींची चली आती है और जब श्वास छोड़ते हैं तब बाहर निकल जाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक श्वास में हजारों मछलियाँ भीतर-बाहर आती-जाती रहती है। ऐसे महामत्स्य के कान में एक तन्दुल मत्स्य रहता है। उसकी आकृति चावल के दाने के बराबर होती है। जब महामत्स्य के मुँह में आते-जाते हजारों मछलियों को वह देखता है तो मन ही मन सोचता है-''ओह! यह मच्छ बड़ा आलसी है, इसे होश नहीं है कि हजारों मछलियाँ आयी और यूँ ही निकल गई। क्याँ करूँ मुझे ऐसा शरीर नहीं मिला? यदि इसकी जगह मैं होता तो एक को भी जीवित न बचने देता।''

बस, इसी दुर्भावना के कारण वह सातवें नरक की आयु का बँध कर लेता है। यद्यपि तन्दुल मत्स्य ने एक भी मछली को नहीं मारा, रक्त की एक बूँद भी उसके द्वारा नहीं बहीं, पर अपनी दुर्भावना और दुष्ट संकल्प के कारण से दुर्गति का पात्र बनना पड़ा।

ऐसे खिलौनो से बचायें बच्चों को

कुछ वर्ष पहले अमेरिका में घटी घटना से हमें सीख लेनी चाहिए। वहाँ एक तीन वर्ष के बेटे ने अपने पिता के रिवाल्वर से अपने ही परिवार के तीन लोगों की हत्या कर दी। गलती उस बालक की नहीं, उसके माँ-बाप की है। बेटा तो अबोध था। उसने अपने पिता के तमंचे को खिलौना समझा और यह दुष्कृत्य कर बैठा। वह समझ नहीं सका कि वह क्या कर रहा है? आजकल के खिलौने भी कुछ इसी तरह के आने लगे हैं। संस्कार हीनता का एक कारण बच्चों के खेल खिलौने भी बन गये हैं। अपने बच्चों को हिंसक खेल खिलौनों से बचाना चाहिए।

जैसी दृष्टि-वैसी सृष्टि

राम-रावण का युद्ध समाप्त हो चुका था। श्रीराम के दरबार में साधुवाद समारोह चल रहा था। सभी एक दूसरे को बधाई दे रहे थे और रणबाँकुरे-परस्पर रण-पौरुष और पराक्रम का बखान कर रहे थे। हनुमान जी का नम्बर आया। वे भी अपने संस्मरण सुना रहे थे। एक, एक चीज का सजीव चित्रण कर रहे थे। जब अशोक वाटिका का प्रसंग आया तो हनुमान जी एकदम लाल हो गये। बोले-अशोक वाटिका बहुत सुन्दर थी, जिसे मैंने तहस-नहस कर दिया। उस वाटिका की एक विशेषता थी कि उसमें जितने फूल थे, सभी ही लाल रंग के थे।

सीता जी वहीं पास बैठीं थी। उन्होंने हनुमान जी को टोकते हुए कहा- ''क्या कह रहे हो? वहाँ लाल रंग का एक भी फूल नहीं था। सारे फूल सफेद ही सफेद थे। तुम तो थोड़ी देर क लिए अशोक वाटिका में गये थे, मैं तो लम्बे समय तक वहाँ रही।'' हनुमान जी कहते है- ''माताजी!'' मुझसे भूल नहीं हो सकती है। मैं झूठ क्यों बोलूँ? श्री राम के सामने मिथ्या बात कैसे कर सकता हूँ? सारे फूल लाल थे। एक भी सफेद नहीं था। सीता ने पुनः मुस्कुरा कर कहा- ''नहीं!''

दोनों के परस्पर कथनों को सुनकर रामजी को हस्तकक्षेप करना पड़ा। उन्होंने दोनों के कथनों को सापेक्षता और अनेकान्त दर्शन से सही बताया। प्रभु! यह कैसे हो सकता है कि हम दोनों की बात सही हो? क्या लाल सफेद हो सकता है? श्री रामचन्द्र जी ने कहा-''बात ऐसी है हनुमान! जब तुम लंका गए थे, तो गुस्से में तुम्हारी आँखें लाल थीं, इसलिए तुम्हें सारे फूल लाल ही लाल दिखाई पड़ रहे थे लेकिन सीता वहाँ सात्विक भावों से बैठीं थीं। अतः उन्हें सारे फूल सफेद दिखाई पड़ रहे थे।'' दोनों को अपनी अपनी बात समझ में आ गई। सबकुछ हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

चक्कर निन्यानवे का

एक धनी सेठ रहता था। वह अपार सम्पत्ति का स्वामी था। धन एवं प्रतिष्ठा की उसके पास कोई कमी नहीं थी। फिर भी उसे रात-दिन चैन नहीं था। वह रात को सही ढंग से सो भी नहीं पाता था। उसकी बेचैनी से उसकी पत्नी बहुत परेशान थी।

एक दिन उसने सेठ जी से निवेदन किया कि हे पतिदेव! अपने पास अपार धन-सम्पदा है, फिर भी सुख चैन क्यों नहीं? न तो आप चैन से समय पर भोजन कर पाते हो, और न ही सुख से सो पाते हो, न ही बच्चों से ढंग से बात करते हो। अपने से तो अच्छा वह बगल में रहने वाला सुखिया हैं। वह सुबह से उठकर भगवाग् का भजन करता है, फिर अपनी मेहनत-मजदूरी के लिए निकलता है। आठ घण्टे मजदूरी करके वह वापस आता है। अपने परिवार के साथ आनन्द से भोजन करता है, बच्चों के साथ खेलता है और रात को खूब भजन गाता है फिर चैन से सोता है। सुबह-सुबह उसके घर से भगवान् के भजनों की ध्वनि हमारे कानों में पड़ती है।

सेठ ने पत्नी की कही बात सुनकर मुस्कुराते हुए कहा- ''सचमुच में सुखिया बड़ा गरीब है। हमें इसे कुछ सहयोग करना चाहिए, बाद में तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान करूँगा।'' सेठ ने अपनी पत्नी को एक थैली पकड़ाई और कहा कि रात में इसे सुखिया के आँगन में डाल देना। पत्नी ने थैली सुखिया के आँगन में डाल दी।

सुबह जैसे ही सुखिया की नजर उस पोटली पर पड़ी। उसने हर्ष से भरकर उसे उठाया। पोटली को खोलकर देखा उसमें सोने की मुहरें थी। उसने अपनी पत्नी को आवाज लगाते हुए कहा कि-''देख आज परमात्मा का प्रसाद अपने आँगन में आया है। सच कहते हैं भगवान् के घर में देर है, अन्धेर नहीं।'' इतना कहकर उसने मुहरों को गिनना शुरु किया। कुल निन्यानबे मुहर थे। उसने सोचा कि निन्यानबे हैं, यदि एक और होता तो पूरे सौ हो जाते। अब वह एक मुहर और प्राप्त करने के लिए दिन-रात बेचैन हो उठा। अभी तक वह जो कुछ

कमाता, उससे उसके परिवार का गुजारा अच्छी तरह हो जाता था। पर अब तो एक मुहर की चिन्ता थी। वह रात-दिन, मेहनत कर पैसा कमाने लगा। पैसा बचाने के चक्कर में उसका खाना-पीना भी कम हो गया, भगवान् का भजन भी छूट गया। जैसे-तैसे पैसे जोड़कर उसने एक दिन एक मुहर प्राप्त कर ली। अब उसने सोचा कि इसे रखने के लिए तिजोरी भी चाहिए। तिजोरी के लिए पैसे जुटाने लग गया। तिजोरी लाने के बाद एक दिन उसने उसमें अपनी मुहरों को डाला, तो देखता है क्या है कि तिजोरी बहुत बड़ी है और मुहर बहुत कम? अब वह तिजोरी भरने के पीछे पागल हो गया और उसका नाम अब सुखिया से दुखिया हो गया है। यही है-'निन्यानबे का चक्कर'।

''धर्म का कुल्ला''

शिष्य ने गुरु से पूछा- गुरुदेव, आपने कहा था कि धर्म से जीवन का रूपान्तरण होता है, लेकिन इतने दीर्घ समय तक आपके चरणों में रहने के बाद भी, मैं अपने रूपान्तरण को महसूस नहीं कर पा रहा हूँ, क्या धर्म से जीवन का रूपान्तरण नहीं होता? क्या मेरा धर्म मेरे जीवन को रूपान्तरित नहीं करेगा? शिष्य की प्रार्थना सुनकर गुरु मुस्कुराये और उन्होंने बतलाया- एक काम करो, थोड़ी मदिरा लाओ। अपने शिष्य को समझाने के लिये गुरु को हर प्रकार के रास्ते अपनाने पड़ते हैं। शिष्य मदिरा लेकर आया।उन्होंने शिष्य से कहा कि- अब इससे कुल्ला करो। लोटे में मदिरा भरकर शिष्य मदिरा से कुल्ला करता है। इस तरह बार-बार कुल्ला करने से पूरा लोटा खाली हो गया। गुरु ने पूछा- बताओ, तुम्हें नशा चढ़ा या नहीं? शिष्य ने कहा- गुरुदेव, नशा कैसे चढ़ेगा? मैने तो सिर्फ कुल्ला किया है। कण्ठ से नीचे उतारता तो नशा चढ़ता। संत ने कहा- 12 वर्षों से तू धर्म का कुल्ला करता रहा है। यदि गले से नीचे उतारता तो तुझ पर धर्म का असर पड़ता। जो लोग केवल सतही स्तर पर धर्म करते हैं, जिनके गले से नीचे धर्म नहीं उतरता, उनके धार्मिक क्रियाओं और जीवन-व्यवहार में बहुत अन्तर दिखाई पड़ता है।

हम पढ़े लिखे अधिक, कम समझदार

एक बच्चा स्कूल में दाखिल हुआ। गुरुजी ने पढ़ाया ''सदा सत्य बोलना चाहिए।'' बेटा घर आया। मकान मालिक किराया वसूलने घर आया। ''पूछा पिताजी कहाँ हैं?'' बेटा भीतर गया। पिता से पूछा! पिता ने कहा कि जाओ उनसे कह दो पिताजी घर पर नहीं है।

दूसरे दिन स्कूल में पढ़ाया गया 'सब जीवों से प्रेम करना चाहिए।' बेटा घर आया। देखता क्या है! उसके माँ-पिता आपस में झगड़ रहे हैं।

तीसरे दिन स्कूल में पढ़ाया गया-कभी किसी को मत सताओ।

बेटा घर लौटा तो देखा कि उसका बड़ा भाई एक अपंग भिखारी को डंडों से पीटकर खदेड़ रहा है।

चौथे दिन बेटे से जब स्कूल जाने के लिए कहा गया तो बेटे ने कहा ''पिताजी! मैं स्कूल नहीं जाऊँगा; क्योंकि गुरुजी ठीक नहीं पढ़ाते हैं।''

बड़ा यर्थाथ चित्रण है-आज के मनुष्य के कथनी और करनी के अन्तर का। आज मनुष्य का ज्ञान बढ़ा है, पर संस्कार घटे हैं। पहले के लोग पढ़े लिखे कम, पर समझदार अधिक होते थे, पर आज के लोग पढ़े लिखें अधिक समझदार कम होते हैं।

जीवन का उपयोग करें उपभोग नहीं।
उपयोग करोगे तर जाओगे,
उपभोग करोगे मर जाओगे।

स्वाभिमान जगायें

आशुतोष मुखर्जी जब कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे, तो उन्हें एक बार विदेश जाने का अवसर मिला। वे स्वयं उत्सुक होकर अपनी माता से विदेश जाने की आज्ञा लेने गये। माँ धार्मिक विचारों से ओत-प्रोत थी। उन्होंने उन्हें विदेश जाने की आज्ञा नहीं दी। मातृभक्त मुखर्जी ने उसी समय विदेश जाने का विचार त्याग दिया।

उस समय भारत के गवर्नर लार्ड कर्जन थें। जब उन्हें मालूम हुआ तो उन्होंने आशुतोष मुखर्जी को बुलाकर कहा-''आपको विदेश जाना चाहिए।'' मुखर्जी ने कहा- ''सर मेरी माँ की इच्छा नहीं है।''

''जाकर अपनी माँ से कहिए कि भारत के गवर्नर जनरल आपको विदेश जाने का आदेश दे रहे हैं।'' लार्ड कर्जन ने कुछ रुखे स्वर में कहा।

मातृ गौरव से दीप्त मुखर्जी ने कहा- ''मैं गवर्नर जनरल से निवेदन करता हूँ कि माता की आज्ञा का उल्लंघन करके मैं किसी की आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। चाहे वह दूसरा व्यक्ति भारत का गवर्नर जनरल भी क्यों न हो।''

ऐसे माता-पिता के भक्त और धार्मिक संस्कारों से ओत-प्रोत पुत्र हो, तभी पुत्र का होना सार्थक है। अन्यथा **''कोऽर्थः पुत्रेन जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः॥''**

धन जीवन निर्वाह का साधन है, साध्य नहीं।

अमर फल

प्रसिद्ध सन्त रंगदासजी जब छोटे थे, तो एक बार उनके पिता ने उन्हें बाजार से फल लाने के लिए कुछ पैसे दिये। रंगदास बाजार में गये। वहाँ उन्होंने भूख से छटपटाते एक परिवार को देखा। उनका मन दया से द्रवीभूत हो गया। रंगदास ने अपना सारा पैसा उन्हें दे दिया। पीड़ित परिवार बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने भोजन सामग्री खरीदी और भूख मिटाई। रंगदास खाली हाथ घर लौटे।

पिता ने पूछा– ''बेटे फल नहीं लाये?''

''पिताजी! मैं आपके लिए अमर फल लेकर आया हूँ।'' रंगदास ने जबाब दिया।

''कहाँ है वह अमर फल?'' पिता ने उत्सुकता पूर्वक पूछा।

''आप यही कहते हैं कि किसी गरीब को अपना द्रव्य देने से परलोक में अमर फल मिलता है। अत: भूख से छटपटाते लोगों को देखकर मैंने वे पैसे उन्हें दे दिये। हम फल खाते तो दो चार क्षण के लिए हमारा मुँह मीठा होता, किन्तु उन लोगों की कई दिन की भूख की तड़फन शान्त हो गई।''

पिता ने पुत्र के उत्तर को सुनकर उसे अपनी छाती से लगा लिया।

संसार से भागो मत,
संसार को भोगो मत।
जागो।

अटल श्रद्धान करे कल्याण

गुरु शिष्य दोनों चले जा रहे थे। जंगल का मार्ग था। गुरु बड़े ही कृपालु थे, बैठ गये और शिष्य से कहा- ''एक काम कर तू मेरी गोद में सर रखकर सो जा। आराम मिलेगा फिर आगे चलेंगे।'' गुरु की आज्ञा पाकर वह शिष्य गुरु की गोद में अपने पिता की गोद जैसा बेटे की भांति सर रखकर सो गया। वह सोया ही था कि गुरु को अपनी तरफ एक भयंकर सर्प आता दिखाया पड़ा। गुरु ने सांप को देखकर कहा कि ''तुम यहाँ पर क्यों आ रहे हो? जैसे ही गुरु ने पूंछा कि सर्प ने गुरु से मनुष्यवाणी में कहा कि 'मैं तुम्हारे शिष्य को काटने आया हूँ। उसका खून पीने आया हूँ।'' गुरु ने पूछा कि 'तुम ऐसा क्यों चाहते हो? यह मेरा शिष्य है। तुम इसका खून क्यों पीना चाहते हो?' सर्प ने कहा कि- 'मैं इसका खून पीऊंगा क्योंकि इसने मेरा खून पिया है और जब तक मैं अपना बैर पूरा नहीं करूँगा मुझे चैन नहीं मिलेगा। इसलिये आप मुझे मत रोकिये। मैं अपना बैर पूरा करके ही जाऊंगा।' गुरु ने समझाया कि 'ऐसा मत करो। यह बैर और विरोध की भावना अच्छी नहीं होती। देखो प्रतिरोध की भावना रख करके आज तुम उसे काटोगे, कल इसके मन में यही भावना जागृत होगी और इस भावना से पीड़ित होकर यह फिर तुम्हें काटेगा और तुम इसे काटोगे। इस तरह से प्रतिशोध की परम्परा आगे बढ़ती रहेगी और यह कभी अंत नहीं होगी।' सांप ने कहा कि 'आपकी यह सब बातें मुझे समझ में नहीं आती। इसने मुझे नुकसान पहुंचाया है। अब तो मैं इसका खून चूस कर ही रहूँगा। इसके बिना मैं नहीं रह सकता।' गुरु के बहुत समझाने पर भी जब सांप नहीं माना, तब गुरु ने कहा कि 'एक काम करो, खून ही पीना है तो मेरा खून पी लो।' पर सांप ने कहा कि 'आप जैसे निरपराधी, सरल स्वभावी को काटकर मैं नरक का भागीदार नहीं बनना चाहता। आपने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा इसलिये मैं आप को नहीं काट सकता। आपका खून नहीं पी सकता। मैं तो इसी का खून पीऊंगा।' अब मामला बड़ा विचित्र हो गया। सांप ने गुरु से कहा कि 'आप अगर अभी मना करोगे तो मैं अभी चला जाऊँगा, बाद में चुपचाप आकर काटूंगा पर काटूंगा तो जरूर।' अब गुरु गंभीर हो गये। गुरु ने कहा 'तुम्हें इसका खून पीना है?' सांप ने कहा- हाँ पीना है। तो गुरु ने कहा 'ठीक है मैं इसका खून तुम्हें दे देता हूँ तुम पी लेना।'

सांप ने कहा 'ठीक है पर मुझे इसके गले का खून पीना है।' गुरु ने कहा- 'ठीक है तुम गले का खून पी लो।' शिष्य सोया हुआ था। गुरु ने आहिस्ता से शिष्य के सिर को जमीन पर रखा। पत्ते का एक दोना बनाया और अपनी जेब से चाकू निकाली फिर शिष्य की छाती पर बैठकर शिष्य के गले में हल्का सा खरोच निकाला, रक्त की धार निकलने लगी। इधर शिष्य को आभास हुआ। आँखों खोली। देखा गुरु मेरी छाती पर बैठें हैं और छुरी चलाकर गले से मेरा खून निकाला रहे हैं। फिर भी उसने आँखें मूंद ली। गुरु ने पर्याप्त मात्रा में खून निकाला और सांप को पिलाया। सांप खून पीकर चलता बना। जैसे ही सांप गया गुरु छाती से नीचे उतरे। शिष्य ने आँखें खोलीं। गुरु को बड़ा आश्चर्य हुआ कहा कि- 'गाढ़ निद्रा में सोते हो इतना सब कुछ होता रहा और तुम्हें कुछ पता नहीं चला। मैं तुम्हारी छाती पर चढ़कर तुम्हारे गले का खून निकाल रहा था और तुम्हें पता नहीं चला।' शिष्य ने कहा कि 'मुझे सब कुछ पता था।' गुरु ने कहा 'तो सिर तुमने प्रतिकार क्यों नहीं किया? तुम चिल्लाये क्यों नहीं?' तो शिष्य ने कहा- 'गुरुदेव, मुझे सब पता था। मैंने सब देख लिया पर मैंने जान लिया कि अगर मेरे गुरुदेव मेरी छाती पर चढ़कर गले पर छुरी चला रहे हैं तो जरूर उनके मन में हित की भावना होगी। अहित की भावना नहीं होगी। इसलिये फिर किसी भी प्रकार के प्रतिकार की बात क्या?' यह होती है समर्पण की भाषा जो आंतरिक होती है। और ऐसे लोग ही परीक्षा में खरे उतरते हैं।

संसार में रहो,
पर स्वयं में रमो।

एक वाक्य ने बदला जीवन

भगवान महावीर के जमाने की एक घटना है रोहिणी नाम का एक बड़ा कातिल चोर था। बड़ी-बड़ी चोरियाँ करता, पर कोई सबूत नहीं बचने देता। सम्राट, सैनिक आदि सभी तंग आ गये थे। पूरा नगर उसके आतंक से परेशान था। रोहिणी का पिता मरणासन्न था उसने बेटे से कहा, सुनो मैं आखिरी क्षणों में तुम्हें सीख देता हूँ कि तुम बाकी जो चाहो सो करना पर भगवान् महावीर की छवि मत देखना व उनकी वीणा मत सुनना। यदि छवि देख ली व वाणी सुन ली तो अपना धंधा चौपट हो जायेगा। उसने पिता को वचन दे दिया तथा छाया व वाणी से बचता रहा। एक बार वह चोरी करके भाग रहा था। पीछे-पीछे सैनिक उसका पीछा कर रहे थे। संयोग ऐसा पड़ा कि वह जिस रास्ते से भाग रहा था उसमें आगे भगवान् महावीर का समवशरण था। अब क्या करे लौटता है तो पकड़ा जाता है। उसने सोचा चलो समवशरण के अन्दर नहीं जाऊंगा। वाणी मेरे कान में जायेगी इससे उसने कानों में उंगलियां डाल लीं। कान में उंगली डाल कर दौड़ा पर यह कैसा संयोग कि थोड़ा ही आगे चला कि एक तीखा पत्थर उसके पांव में चुभ गया। अब वह क्या करें? जब तक पत्थर को हटाये नहीं, आगे नहीं जा सकता कान से उंगली निकाल कर उसने पत्थर हटाया ही था कि उसके दिल में एक वाक्य कांटे की भांति चुभ गया। उस समय भगवान महावीर देवों के स्वरूप का वर्णन कर रहे थे और कह रहे थे कि देवों की पलकें नहीं झपकती। उसने सुन लिया। सोचा आज तो मेरा वचन भंग हो गया आज मैंने भगवान की वाणी सुनली अब तो मेरा धंधा चौपट हो जायेगा वह ठीक ढंग से दौड़ नहीं पाया और गिर कर बेहोश हो गया। वह पकड़ा गया जब उसे होश आया तो देखता है पूरा वातावरण स्वर्गलोक जैसा है अप्सरायें उसे पंखे झल रही हैं। उसने आँख खोली पूंछा, मैं कौन हूँ? कहां हूँ? उन देवियों ने कहा महानुभाव आप दिव्य लोक में आये हैं, स्वर्ग में आपका स्वागत है। अब आप बताइये आपने मनुष्य लोक में क्या-क्या अच्छे व बुरे काम किये हैं? आप सच-सच बतायेंगे तो स्वर्ग में प्रवेश दिया जायेगा वरना नरक में ढकेल दिया जायेगा। उसने सोचा, हमने सुना था कि बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता। मैं जीते जी स्वर्ग कैसे आ गया? अपनी आँखो पर विश्वास नहीं हुआ। कहीं मैं सपना तो

नहीं देख रहा हूँ। लेकिन वहां सपना नहीं था क्योंकि वहां पर पूछा जा रहा था कि आप सच-सच बोलो तभी उसने उनके चेहरों को देखा और पाया कि इनकी पलकें तो झपक रही हैं। भगवान महावीर ने कहा था कि देवों की पलकें नहीं झपकती। उसे बात समझने में देर नहीं लगी। उसने सोचा, ये तो मुझे पकड़ने का अभयकुमार का कारनामा है। कुचक्र में वह भी माहिर था उसने जिन्दगी में जितनी अच्छी बातें थी सब बता दी बुरी बात एक भी नहीं स्वीकारी। अब क्या था कोई साक्षी नहीं होने के कारण वह छोड़ दिया गया। जैसे ही छूटा उसका चिन्तन बदला। धिक्कार है मुझे, मेरे पिता ने अपने स्वार्थ के लिए उस महान आत्मा की छाया से दूर रखा जिसके एक वाक्य ने आज मेरे प्राणों को बचा लिया। यदि मैं उनका हो जाऊँ तो मेरे जीवन का उद्धार हो सकता है। वह वहां से सीधा निकला व समवशरण में गया। भगवान की साक्षी में दीक्षा अंगीकार कर ली। केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया।

आयेगा सो जायेगा

राजा भोज बहुत दानी था, उदार था। चाहे जिसको दान देता रहता था। उसके मंत्रियों ने उसे समझाने के लिये एक उपाय रचा और जहां से राजा रोज निकलता रहता था वहां संस्कृत का एक सूत्र लिख दिया-'**आपदार्थ धनम् रक्षे**'- मतलब आपत्ति के लिये धनकी रक्षा करें। राजा भोजने देखा। समझ लिया, यह मंत्रियों का एक सन्देश है। राजा भोज भी भोज ही थे। उनने उसके नीचे दूसरा वाक्य लिख दिया **सताम् आपदा कुतः**- सज्जनों के जीवन में आपत्ति आती कहां है? सज्जनों के लिये तो आपदा भी सम्पदा है। तो मंत्रियों ने लिखा- '**दैवात् क्वचित् समायति**' - कर्म के योग से कदाचित् आपदा भी आ सकती है, इसलिए धन को संचित रखो। तो राजा भोज ने नहले पर दहला ठोकते हुये लिखा **संचितार्थम् विनश्यति।** जो संचित धन है वह व्यर्थ हो जाता है इसलिए जो है उसे लगा दो, रखो मत। बहुत गहरा सन्देश है।

करें मान का मर्दन

एक बार एक बैलगाड़ी चली जा रही थी। उसके नीचे एक कुत्ता भी चल रहा था। उसके साथी कुत्ते ने उसे देखकर पूछा "क्यों भाई! कहाँ जा रहे हो?" कुत्ते ने जबाब दिया- "दिखता नहीं है मैं बैलगाड़ी खींचकर ले जा रहा हूँ।" अरे वाह! तुम बैलगाड़ी खींच रहे हो कि बैल खींच रहे हैं? फालतू बात मत कर। कुत्ते न कहा "मैं कह रहा हूँ न कि मैं बैलगाड़ी खींच रहा हूँ। देखो अगर मैं रुकूँगा तो गाड़ी भी रुक जायेगी।"

कुत्ता रुका। संयोग से गाड़ी भी रुक गई। कुत्ते ने अकड़ कर कहा देखा! मैं रुका तो गाड़ी भी रुक गई। अब मैं चलूँगा तो गाड़ी भी चल पड़ेगी। वह चला और संयोग से गाड़ी भी चल पड़ी। कुत्ता अपने अभिमान में फूल गया।

अहंकारी आदमी की कुछ ऐसी ही प्रकृति होती है।

"माँ का साथ"

कौरव और पाण्डव दोनों एक ही कुल में जन्में। लेकिन कौरवों का कोई नाम नहीं लेना चाहता। पाण्डव हम सबके आदर्श हैं। आपने कभी विचार किया कि पाण्डवों का जीवन इतना आदर्श कैसे बना। जहाँ तक एक मेरी सोच है। पाण्डवों को हमेशा माँ के संस्कार मिले, माँ का संरक्षण मिला। वनवास काल में भी उनकी माता उनके साथ रहीं। कुन्ती का साथ हमेशा पाण्डवों को मिलता रहा। उनके संस्कार और शिक्षा पाण्डवों को मिलते रहे। दूसरी ओर अनुपम सती होने के बाद भी गांधारी अपनी आँखों पर पट्टी बांधे रही। उसने कभी अपनी संतान को आँख खोलकर देखा ही नहीं, संस्कार कहाँ से आते? संस्कार तो केवल उन्हीं बच्चों में आते हैं जिन्हें माँ का प्यार और वात्सल्य मिलता है। परिणाम यह निकला कि कौरव मानव होकर भी मानव जाति के लिये कलंक बन गये और पाण्डव मानव ही नहीं मानवता के आदर्श बन गये। माँ की भूमिका बहुत बड़ी भूमिका है।

खाली हाथ है जाना

सिकन्दर जब मर रहा था तब उसने अपने परिचारकों से कहा कि अब मैं मरूँगा, पर तुम इतना कर लो मुझे माँ से मिलने की इच्छा है, मेरी माँ से मिलने तक तुम मुझे बचा लो। उनके वैद्यों ने कहा- राजन् आपकी शारीरिक स्थिति इतनी क्षीण हो गई है कि आपकी माँ से मिलने तक आपको बचाने की गारण्टी नहीं दी जा सकती। ''सिकन्दर ने कहा-ठीक है, मेरी माँ से मिलने तक नहीं बचा सकते तो कोई बात नहीं, मेरी माँ को यहाँ लाने तक मुझे बचा लो, मैं तुम्हें आधा साम्राज्य दे दूँगा। तो उसके वैद्यों ने कहा- आधा क्या अगर आप पूरा साम्राज्य भी दे दें तो भी आपको बचाने की गारण्टी हम नहीं ले सकते। सिकन्दर की आँखें अन्दर ही अन्दर खुल गईं। उसने कहा''-

''अब मैं चाहूँ भी तो रुक सकता नहीं दोस्त
कारण मंजिल ही खुद ढ़िग बढ़ती आती है।
मैं जितना पैर बढ़ाने की कोशिश करता
उतनी ही माटी और धसकती जाती है।
मेरे अधरों में घुला हलाहल है काला
नैनों में नंगी मौत खड़ी मुस्कराती है,
है राम नाम ही सत्य-असत्य सब और कुछ
बस यही ध्वनि कानों से आ टकराती है।''

अब मैं मरूँगा, मुझे इसका गम नहीं है। पर आज मुझे एक बात अच्छी तरह समझ में आ गई- ''जिस सत्ता और सम्पदा के पीछे मैंने अपने जीवन की सारी श्वासें खोयीं उन्हें दाँव पर लगाने के बाद भी वे मुझे एक श्वांस तक नहीं बचा सकती। धिक्कार है इस वैभव को, धिक्कार है इस हुकूमत को। मेरी सिर्फ यही अन्तिम इच्छा है कि मेरे मरने के बाद जब तुम मेरा जनाजा निकालो उस समय मेरे दोनों हाथ बाहर रखना ताकि दुनियाँ के लोग यह जान सकें कि सिकन्दर जैसा विश्व विजेता भी इस संसार से खाली हाथ जा रहा है।''

मिथ्याचार का फल

बैरिस्टर चितरंजन दास मुखर्जी ट्रेन से यात्रा कर रहे थे वे अपनी सीट पर बैठे पेपर पढ़ रहे थे, ट्रेन में भीड़ नहीं थी, पूरा कम्पार्टमेन्ट खाली था। एक सम्भ्रान्त सी नवयुवती उनके पास आयी और बैठने की अनुमति माँगने लगी। मुखर्जी ने इशारे से बैठने की अनुमति दे दी। पहले तो उस युवती ने अपने दु:खों का रोना रोकर उन पर अपना विश्वास जमाना चाहा, फिर जब ट्रेन ने स्पीड पकड़ी तो अपना असली रूप प्रकट करते हुए कहा- ''देखिए, पूरे कम्पार्टमेन्ट में हम दोनों के अतिरिक्त कोई नहीं है आप मुझे एक हजार रुपये दे दो अन्यथा मैं चिल्ला दूँगी कि आपने एकान्त का फायदा उठाकर मुझसे बदतमीजी की है।'' युवती ने बैरिस्टर साहब को ब्लैकमेल करना चाहा। पर बैरिस्टर साहब भी कम नहीं थे। उन्होंने इशारे से कहा- मैं सुन नहीं सकता और बोल भी नहीं सकता। अत: तुम क्या चाहती हो, लिखकर बता दो। युवती ने आव देखा न ताव, झट से एक कागज पर अपनी बात लिख दी। बैरिस्टर साहब ने उसे बड़े इत्मीनान से पढ़ा और अपनी जेब में रख लिया। फिर जोर से उसके गाल पर एक तमाचा जड़ते हुये कहा- ''दुष्टा! तू मुझे ब्लैकमेल करना चाहती है। अब चिल्ला, तुझे जितनी जोर से चिल्लाना हो।'' वह युवती सन्न रह गई, वह अपनी ही चाल में फँस गई। बैरिस्टर साहब ने उसे गिरफ्तार करवा दिया।

धंधा करो पर
वह अंधा न हो और
अंधाधुंध भी न हो।

लोभ पर विजय

कपिल नाम का एक ब्राह्मण था। वह कौशाम्बी से श्रावस्ती आकर अपने पिता कश्यप के मित्र इन्द्रदत्त उपाध्याय के यहाँ विद्याध्ययन करता था। सेठ शालिग्राम के यहाँ उसके भोजन की व्यवस्था थी। लेकिन संयोग कुछ ऐसा बना कि वह आया तो था जीवन का पाठ पढ़ने पर सेठ की दासी से प्रेम करके प्रेम का पाठ पढ़ने लगा। एक दिन उस दासी ने कपिल से कहा–''कल मुझे एक उत्सव में सम्मिलित होना है। क्या तुम मेरे लिए वस्त्र-आभूषणों की व्यवस्था नहीं करोगे। तुम तो मुझसे प्रेम करते हो।'' कपिल ने कहा– ''मेरे पास धन कहाँ है, मेरे भोजन तक की व्यवस्था तो दूसरों के यहाँ है। मैं तुम्हारे वस्त्राभूषणों की व्यवस्था कैसे करूँ?'' दासी ने कहा– ''तुम चिन्ता मत करो। यहाँ का राजा बड़ा उदार है, जो कोई भी प्रात:काल उसे सबसे पहले आशीर्वाद देता है वह उसे दो माश स्वर्ण प्रदान करता है। अत: तुम सबसे पहले राजा के पास जाकर उसे आशीर्वाद दे दो और दो माशा स्वर्ण प्राप्त कर लो।''

चाँदनी रात थी। सुबह हो जाने का समय निकट जानकर आधी रात में ही कपिल अपने घर से निकल पड़ा और तेजी से दौड़ने लगा। उसे दौड़ता देख सिपाहियों ने चोर समझकर उसे पकड़ लिया। अगले दिन उसे राज दरबार में पेश किया गया। राजा ने उससे आधी रात में दौड़ने का कारण पूछा। उसने सारी बात सच-सच बता दी। उसने कहा– ''मैं तो दो माशा सोना पाने के लिए आपके पास आया था। सोचा था कि कहीं कोई दूसरा आकार आपको आशीष न दे जाए, अन्यथा मुझे वंचित रहना पड़ेगा।'' राजा उसकी सत्यवादिता से बड़ा प्रभावित हुआ और बोला– ''ब्राह्मण! मैं तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूँ। तुम जो माँगोगे मैं तुम्हें वह दूँगा।''

कपिल बोला– ''अच्छा ऐसी बात है तो मुझे थोड़ा सोचने का वक्त दें।'' राजा ने कहा– ''ठीक है, सोच लो।'' कपिल एकान्त में जाकर सोचने लगा– दो माशा स्वर्ण से कुछ होगा नहीं, मैं तो सौ स्वर्ण मुद्राएँ माँग लूँ। सौ स्वर्ण मुद्राओं से क्या होगा, अच्छे आभूषण और वस्त्रादिक भी नहीं आ पायेंगे। ऐसा करता हूँ, हजार स्वर्ण मुद्रायें माँग लेता हूँ। हजार स्वर्ण मुद्राओं से क्या होगा, ये

तो बहुत थोड़ी है, कभी भी समाप्त हो जाएगी। दुनियाँ में बहुत से बड़े-बड़े लोग हैं, जिनके पास लाखों-करोंड़ों की सम्पत्ति है। अत: राजा जब दे ही रहा है, तो क्यों न एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ माँग लूँ। वह इसी उधेड़बुन में था कि तभी राजा ने कहा- ''ब्राह्मण! माँगो जल्दी, क्या चाहते हो?''

राजा के मुख से ब्राह्मण शब्द सुनते ही उसके भीतर का ब्रह्म जाग गया। उसने सोचा धिक्कार है मुझे। मैंने देख ली लोभ की लीला। मैं तो मात्र दो माशा सोने के लिए आया था, लेकिन लाभ को देखते ही मेरे मुँह में पानी भर आया और करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं तक पहुँच गया, फिर भी मेरे मन को तसल्ली नहीं मिली। इस प्रकार तो मेरे मन की आकांक्षाएँ कभी भी पूरी नहीं होंगी। मैं अतृप्त का अतृप्त ही बना रहूँगा। मुझे तो इस राज्य की अपेक्षा प्रभु का राज्य चाहिए, जो परम तृप्ति और आनन्द से परिपूर्ण है। धन की लिप्सा अन्तहीन है। इससे कभी तृप्ति नहीं मिल सकती। कपिल चिन्तन की गहराई में डूब गया।

राजा ने पास जाकर पूछा- ''कहो ब्राह्मण, आपने क्या माँगने का सोचा है?''

कपिल ने कहा- ''नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। मुझे जो चाहिए था वह सब मिल चुका है।'' राजा आश्चर्यचकित होकर बोला- ''मैंने तो आपको कुछ भी नहीं दिया, आपको कहाँ से मिल गया।'' कपिल ने अपनी चिन्तन कथा कह सुनाई। राजा ने हर्षित होकर कहा- ''आप नि:संकोच होकर दस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ माँगें, मैं अवश्य दूँगा।'' कपिल बोला- मुझे आवश्यकता नहीं। मुझे तो परिग्रह परित्याग करके लोभ पर विजय करना है, जिससे मैं पूर्ण तृप्ति को पाकर परम सुख का अनुभव कर सकूँ। यों कहकर कपिल वहाँ से चल पड़ा और स्वयंबुद्ध होकर स्वत: मुनि जीवन अंगीकार करा। उसे छह महीने में केवलज्ञान हो गया।

वाणी से व्यक्ति की पहिचान होती है।

मम्मन सेठ की कहानी

मम्मन सेठ राजगृही का एक बहुत बड़ा श्रेष्ठि था। वह बड़ा लोभी और कंजूस था। वृद्धावस्था के कारण उसका शरीर दिनों-दिन जर्जर होता जा रहा था पर उसके मन की तृष्णा दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी। वह ढंग से खाता-पीता भी नहीं था। प्रायः जो लोग कंजूस होते हैं वे न तो अपनी सम्पत्ति का स्वयं उपभोग कर पाते हैं और न ही दूसरों को उदारतापूर्वक दे पाते हैं। यही स्थिति उसकी थी इसीलिए अपने सारे बच्चों को अपने से अलग कर उनका सेपरेशन कर दिया था। उसके बाद भी बच्चों को खर्च करता देख उसे बड़ी तकलीफ होती थी।

एक दिन उसने अपनी सारी सम्पत्ति का आकलन किया और सोचा कि कहीं कोई लूट न ले जाये। अतः उसने सारी सम्पत्ति को बेचकर एक रत्नजड़ित स्वर्ण का बैल बनवाया। उसे अपने घर के तहखाने में रख दिया। तभी उसके मन में एक विचार आया कि मैंने अपनी कमाई से एक बैल तो तैयार कर ही लिया है, अच्छा होता इसका जोड़ा और तैयार हो जाता। पर अब जोड़ा कैसे तैयार किया जाये? सारी सम्पत्ति तो इसी बैल में लग गई। लेकिन अभी मुझमें बल है, सत्व है, मेहनत मजदूरी करके मैं फिर से धन जोड़ लूँगा और अपना जोड़ा तैयार करके ही छोड़ूँगा।

बरसात का समय था। उसने देखा नदियाँ अपने पूर पर हैं। उनमें बड़े-बड़े लकड़ियों के लट्ठ अपने आप बहे चले जा रहे हैं। उसने सोचा बरसात में लकड़ियों की कीमत भी ज्यादा होती है, यदि में नदी तक जाकर लकड़ियों को बटोर लूँ तो इसकी अच्छी कीमत मिल सकती है। घर से वह लंगोटी में निकला इसलिए कि कपड़े भीग न जायें। पानी में गया और बहती हुई लकड़ियों को जल की तेज धार से खींचकर किनारे पर लाने का प्रयत्न करने लगा। महारानी चेलना राजगृही के राजमहल के झरोखे से सब कुछ देख रहीं थीं। उसे देखते ही महारानी का मन दया से द्रवीभूत हो गया। उसने महाराजा श्रेणिक से कहा कि ''आपके राज्य में एक ऐसा दीनहीन व्यक्ति है जो इतनी मूसलाधार वर्षा

में अपनी जान की बाजी लगाकर लकड़ियों को निकाल रहा है। आप उसे बुलाकर उसकी समस्या का समाधान कीजिए।''

सैनिकों द्वारा सेठ को दरबार में बुलवाया गया। राजा श्रेणिक ने उससे लकड़ियाँ बटोरने का कारण पूछा- ''भाई तुम्हें आखिर ऐसी क्या कमी आ पड़ी है, जो तुम इस विषमतम परिस्थिति में लकड़ियाँ बटोर रहे हो?''

सेठ ने कहा, क्या करूँ। मेरे पास एक बैल है, उसका जोड़ा नहीं है मैं चाहता हूँ, उसका जोड़ा पूरा हो जाए, तभी मैं अपना काम पूराकर सकूँगा।

सम्राट श्रेणिक ने कहा- ''बस इतनी सी बात! मेरी गौशाला में चलो और तुम्हें जो भी बैल पसन्द हो ले लो।'' सम्राट के साथ वह गौशाला में गया। एक से एक उत्तम नस्लों के बैलों को दिखाया गया। पर मम्मन सेठ को उनमें से कोई भी बैल पसन्द नहीं आया। उसने कहा- ''राजन्! बेशक तुम्हारी गौशाला में एक से एक बैल हैं पर मेरे बैल के बराबरी का एक भी नहीं है।'' श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा- ''आखिर ऐसा कौन सा बैल है तुम्हारा! लाकर बताओ।'' मम्मन ने कहा- ''राजन् मैं अपने बैल को दरबार में पेश नहीं कर सकता। यदि मेरे बैल को देखना चाहते हो तो आपको मेरे घर पर चलना होगा।'' राजा श्रेणिक, रानी और अपने मन्त्री अभयकुमार को लेकर मम्मन सेठ के यहाँ पहुँचे। मम्मन सेठ ने सबको अपने तहखाने में ले जाकर अपना रत्नजड़ित स्वर्ण बैल दिखाते हुए कहा- ''महाराज! मुझे ठीक ऐसा ही दूसरा बैल चाहिए।'' श्रेणिक विस्मित और कुपित होकर बोला- ''भले आदमी! इतने रत्नों और सम्पत्ति के स्वामी होने के बाद भी तुम अपनी जिन्दगी दाँव पर लगा रहे हो। तुम्हारे यहाँ किसी चीज की कमी नहीं है, फिर भी तुम लोभवश और अधिक सम्पत्ति जोड़ना चाहते हो। मान लो, एक बैल और हो भी जाए, तो भी तुम्हारी लालसा शान्त नहीं होगी। याद रखो, तुम्हारी सारी सम्पत्ति यहीं धरी रह जायेगी। सुई की नोंक बराबर सम्पत्ति भी तुम्हारे साथ नहीं जायेगी। फिर भी तुम इस सम्पत्ति के व्यामोह में न खाते हो, न खर्च करते हो, न ही किसी को देते हो। धिक्कार है, तुम्हारे इस जीवन को।''

राजा की फटकार का मम्मन पर कोई असर नहीं पड़ा। उसने राजा की

सारी बातें चुपचाप सुन लीं और उन्हें विदाकर अपने धन्धे में लग गया। शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि अपनी इसी धन लिप्सा के कारण वह मरकर सातवें नरक में उत्पन्न हुआ। धन ही जिनके जीवन का साध्य है, उनकी यही परिणति होती है।

''माँ के संस्कार''

कुन्दकुन्द आचार्य की माँ के विषय में कहा जाता है कि जब कुन्दकुन्द (शिशु) माँ के पेट में थे, तभी से वे अध्यात्म का संदेश सुनाया करती थीं। हमेशा अध्यात्म का अनुपान कराती थीं। जन्म लेने के बाद उस बेटे को लोरियों में 'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि, संसारमाया विनिर्गतोऽसि' की लोरी सुनाया करती थीं। उसी का परिणाम हुआ कि प्रबुद्ध-चेता माँ ने अपने वैदुष्यपूर्ण संस्कार के कारण कुन्दकुन्द के अन्दर असाधारण क्षमताओं का समारोपण कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप वह छोटा बालक कुन्दकुन्द 11 वर्ष की अवस्था में अध्यात्म का प्रवर्तक बन गया। आज जैन परम्परा में गौतम स्वामी के बाद उन्हें याद किया जाता है-

मङ्गलं भगवान वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥

आज जैनों के पास जो अध्यात्म है, वह केवल आचार्य कुन्दकुन्द की देन है, जो माँ के संस्कार की बात है।

दूरदर्शि बनें
दुःखदर्शी नहीं।

तन मिला तुम तप करो

नगर के मध्य एक विशाल मन्दिर था। मन्दिर की मुख्य वेदी पर एक भव्य प्रतिमा विराजमान थी। प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ थी। हजारों श्रद्धालु रोज आकर प्रतिमा की पूजा-अर्चना किया करते थे। प्रतिमा के ठीक सामने पाषाण का एक खम्भा खड़ा था। उसे प्रतिमा की पूजा-भक्ति सहन नहीं होती थी। एक दिन एकान्त पाकर उसने प्रतिमा से कहा- ''अरी बहिन! देखो तो मनुष्यों का यह कैसा पक्षपात है। तेरी-मेरी जाति एक, वंश एक, अंश एक फिर भी यह कैसा भेदभाव कि जो आता है तेरी पूजा करता है और मेरी पूजा तो दूर, उलटे मुझसे टिककर बैठ जाता है। खम्भे के उपालम्भ का सुनकर प्रतिमा मुस्करा उठी।'' उसने कहा- बन्धुवर! अपनी इस अपेक्षा का कारण तुम स्वयं हो। तुम्हें मेरी पूजा और प्रतिष्ठा से इतनी ईर्ष्या हो रही है, पर मेरे यहाँ तक आने में मैंने कितनी साधना की, कष्ट सहा है उसका तुम्हें अन्दाज नहीं है। जो कष्टों को सहता है, तपस्या करता है, वही शाश्वत प्रतिष्ठा को उपलब्ध कर पाता है। कुछ क्षण रुककर प्रतिमा ने पुनः कहा- ''तुम्हें याद है एक दिन शिल्पी हमें लेने के लिए खदान में आया था। अपने बड़े-बड़े औजारों से प्रहार करके हमें अपने परिजनों से छुड़ाया था। बड़ा कष्ट हुआ, पर मेरे प्रति, शिल्पी की आँखों में उमड़ती हुई ममता ने मुझे खींच लिया। शिल्पी खदान से उठाकर मुझे अपने घर लाया और मेरी छाती पर चढ़कर धारदार छैनी और हथौड़ों से प्रहार करने लगा। मैं चुपचाप सहती रही। थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि मेरा बेकार भाग छँटता जा रहा है और मुझे सुन्दर आकार मिलता जा रहा है। शिल्पी ने मुझे तराश-तराश कर प्रतिमा का आकार प्रदान कर दिया। तुम देख रहे हो लोग मुझे भगवान् मानकर पूजते हैं। तुम्हें मेरी पूजा दिखती है, पर उसके पीछे की तपस्या/साधना नहीं दिखती। काश! तुम भी मेरी तरह शिल्पी का अनुकरण करते तो तुम्हारी यह दशा नहीं होती।'' प्रतिमा की बात सुनकर खम्भा निरुत्तर हो गया। ठीक यही स्थिति इन्सान की है। इन्सान में भगवान् छिपा है, पर उसकी अभिव्यक्ति के लिए तप साधना जरूरी है।

''**तप सर्वार्थ साधनं**'' तप से सभी अर्थों की सिद्धि होती है।

सत्याचरण ही भगवान् की पूजा

एक व्यापारी किसी कार्य से दिल्ली गया। उसे बहुत से ऑफीसरों, दुकानदारों से अपने व्यापार के सम्बन्ध में मिलना था। उसने एक टैक्सी की, उसी से सभी जगह गया। काम पूरा हुआ, टैक्सी का किराया दिया और एक होटल में चला गया। टैक्सी वाला अपने ठिकाने पर पहुँचा। दिनभर काफी चलना हुआ था, सोचा थोड़ा आराम करें। गाड़ी खड़ी की तो उसे पिछली सीट पर एक मनी बैग दिखाई दिया। वह चिन्तित हो गया। सोचने लगा जरूर यह उस सेठ का है, जिन्हें वह छोड़कर आया है। शायद बैग में कहीं नाम पता हो। उसने बैग खोला। उसमें नाम पता तो मिला नहीं, परन्तु बैग में बहुत सारे रुपये थे। इतने रुपये देख वह घबरा गया। उसे आत्मग्लानि होने लगी- सेठ जी का इतना सारा रुपया मेरी गाड़ी में छूट गया वो कितना परेशान हो रहे होंगे। मेरे बारे में न जाने क्या सोच रहे होंगे। क्या करूँ? वह सीधा उस होटल में गया जहाँ अन्त में उसने सेठ को छोड़ा था। वहाँ सेठ जी को होटल में ध्यान आया कि रुपयों वाला बैग तो टैक्सी में ही रह गया, वे एकदम निराश-हताश हो गए। अब क्या करूँ? टैक्सी का नम्बर भी पता नहीं है, टैक्सी कैसे ढूँढे? सेठ जी टैक्सी की तलाश में सड़कों पर टैक्सी देख रहे थे। इधर ड्राईवर होटल के चक्कर लगा रहा था। कितनी विचित्र स्थिति थी एक रुपया लेने दौड़ रहा है और दूसरा रुपया देने। काफी देर बाद सेठ जी निराश होकर होटल में लौटे, टैक्सी वाले ने उन्हें देखा। वह प्रसन्न हुआ कि चलो सेठ जी मिल गये। वह सेठ के पीछे उनके कमरे तक गया और कहा- ''वाह! सेठ जी खूब परेशान कर दिया। लो सम्हालो अपनी अमानत।'' सेठ जी की आँखें चमक उठीं। विश्वास ही नहीं हो रहा था, ये क्या चमत्कार हो गया। लपककर उस बैग को ले लिया। रुपये गिने, पूरे थे। सेठ जी का मन गद्‌गद्‌ हो गया। उन्होंने उसे पाँच हजार रुपये देना चाहे। ड्राईवर सिक्ख था। बोला- ''देखो, मैं सच्चा सिक्ख हूँ। पराया धन, पराई कमाई नहीं लेता। आप पाँच हजार की बात कर रहे हैं, मैं आपके पाँच पैसे भी नहीं लूँगा। रुपयों का लालच होता तो यहाँ आता ही क्यों? पूरा ही हजम कर लेता।'' सेठ ने फिर

आग्रह किया अरे भाई ! मैं तो पुरस्कार स्वरूप दे रहा हूँ, ले लो।'' उसने कहा- मैं मुफ्त में कुछ नहीं लेता। आपने टैक्सी का किराया दे दिया है। इसके अलावा कुछ भी लेना मेरे लिए हराम है। वह चला गया। सेठ उसे आश्चर्य और कृतज्ञता भरी नजरों से देखता रहा। यह है व्यवहार में सत्य का आचरण।

''मत भूलो संस्कार''

किसी दार्शनिक/विचारक से एक बार किसी जिज्ञासु ने पूछा- राष्ट्र की व्यवस्था के लिए मूलभूत किन-किन चीजों की आवश्यकता होती है? उस दार्शनिक ने जबाव दिया- अनाज, सेना और सुसंस्कार। ये तीन बिन्दु ऐसे हैं जिन पर किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा टिकी है। जिज्ञासु ने पुनः पूछा- यदि इनमें से किसी एक चीज की कमी हो तो क्या उससे काम चल जायेगा? दार्शनिक ने कहा- सेना के अभाव में अनाज और संस्कार के बल पर राष्ट्र टिक सकता है। जिज्ञासु ने पुनः पूछा- यदि किसी दो की कमी हो तो फिर क्या होगा?

दार्शनिक ने कहा- कदाचित् सैनिक के अभाव में राष्ट्र चल सकता है, अनाज के अभाव में राष्ट्र चल सकता है। जिस राष्ट्र में सैनिक नहीं है, अनाज नहीं है, उस राष्ट्र का अस्तित्व तो फिर भी बच सकता है। लेकिन जिस राष्ट्र के सुसंस्कार समाप्त हो गये उसका अस्तित्व कुछ नहीं रह सकता। वे हमारे जीवन की धुरी हैं। उनके प्रति आस्था जब तक जीवित रहेगी तब तक हमारा जीवन समुन्नत बना रहेगा। जिस दिन यह आस्था चरमरा गई उस दिन हमारे जीवन के ढाँचे को कोई संभाल नहीं सकता।

मान देने के लिए होता है,
लेने के लिए नहीं।

पारसमणि

एक व्यक्ति को सपने में परमात्मा का दर्शन हुआ। परमात्मा ने उससे कहा- ''कि प्रात: उठकर अपने घर से तीन मील दक्षिण की ओर जाना, नदी के किनारे एक साधु की कुटिया मिलेगी। उस साधु के पास एक पारसमणि है, तुम जाओ और उसे माँग लो। तुम्हारी दरिद्रता दूर हो जायेगी।'' इतना देखते ही उसकी नींद खुल गई। वह प्रसन्नता से भरकर उठा और पौ फटते ही दक्षिण की ओर बढ़ चला। तीन मील की दूरी पूरी करते ही उसे साधु की कुटिया दिखाई पड़ी। वह वहाँ पहुँचा और साधु को प्रणाम कर रात सपने में घटी बात बताते हुए पारसमणि की याचना की।

साधु ने उससे कहा मेरे पास पारसमणि तो है, पर यहाँ नहीं है। यहाँ से आधा मील आगे एक वट वृक्ष है, उसके नीचे रखी है। तुम नदी के किनारे-किनारे जाओ और उसे ले लो। वह प्रसन्नता पूर्वक उधर बढ़ा। दूर से ही वट के वृक्ष के नीचे चमकता हुआ पारसमणि दिखाई पड़ा। उसने उमंगों से भरकर उसे उठाया कि तभी उसके मन में एक विचार कौंधा ''निश्चित रूप से यह साधु महान् है तभी तो इतनी कीमती मणि को यूँ ही खुला रख छोड़ा है। उसके पास इससे भी मूल्यवान मणि होगी। यदि मुझे लेना ही है तो वही मणि लेनी चाहिए।'' यह विचार आते ही उसके हाथ की मणि छिटक कर जमीन में गिर गई और वह खाली हाथ वापिस लौट आया। उसे खाली हाथ लौटा देखकर सन्त ने पूछा- ''क्यों तुम मणि नहीं लाये?'' युवक ने कहा- ''प्रभु मुझे वह मणि नहीं चाहिए जो आप खुले आम रखते हैं। मुझे तो वह मणि चाहिए जो आप अपने पास सहेजकर रखते हैं।''

सन्त ने कहा- ''यदि दुनियाँ की सबसे मूल्यवान् मणि चाहते हो, तो उसके लिए कहीं बाहर भटकने की जरूरत नहीं है। वह तुम्हारे भीतर है। उस ओर देखने की कोशिश करो।''

दानवीर सेठ झगडूशाह

बात गुजरात की है। एक बार वहाँ भयंकर दुष्काल पड़ा, जनता दाने-दाने के लिए मोहताज हो गयी। राजा के भण्डार में अन्न नहीं बचा। राजा को अपने गुप्तचरों से मालूम पड़ा कि सेठ झगडूशाह के पास अपार अनाज है और उसने अनेक सदाव्रत खोल रखे हैं, जिससे लोगों को अनाज मिल रहा है। राजा झगडूशाह की दानशीलता से प्रभावित था। उसने अपने दीवान को झगडूशाह के पास भेजा कि ''राज भण्डार में अन्न की कमी है। जनता के लिए अनाज की आवश्यकता है, आप कुछ अनाज उधार के रूप में दे दें। सुकाल आने पर वापस लौटा देंगे।'' जैसे ही दीवान ने झगडूशाह के पास राजा का उक्त प्रस्ताव दिया, झगडूशाह ने दोनों हाथ जोड़ लिए और कहा- मेरे पास अनाज का एक दाना भी नहीं है। मन्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ। कहाँ तो इतनी प्रसिद्धि, इतना उदार दानवीर और अब आपत्ति के समय कह रहा है- ''अनाज का एक दाना भी नहीं है। बात राजा तक पहुँची। राजा बड़ा नाराज हुआ। झगडूशाह को दरबार में बुलवाया गया।'' राजा ने कहा- ''मैंने सुना है आपके भण्डार में पर्याप्त अनाज है, फिर भी आप अनाज देने से इंकार कर रहे हो।'' झगडूशाह ने विनम्रता पूर्वक जबाब दिया- ''यदि मेरे पास मेरा थोड़ा भी अनाज होता तो उसे देने में जरा भी देर नहीं करता। पर क्या करूँ, मैं मजबूर हूँ।'' ''तो फिर तुम्हारे कोठों में भरा अनाज किसका है?'' राजा ने उत्सुकता पूर्वक पूछा।

''राजन्! आप स्वयं चलकर देख लीजिए कि वह अनाज किसका है।'' शाह ने जबाब दिया।

राजा आश्चर्य और उत्सुकता के साथ झगडूशाह के साथ चला। झगडूशाह ने अपने अनाज के पहले कोठे को खुलवाया। अनाज के ढेर के साथ एक ताम्रपत्र गिरा। वह ताम्रपत्र शाह ने राजा को पकड़ाते हुए कहा- ''राजन्! आप कोठे का सारा अनाज अकाल पीड़ित मानवता का है।'' ताम्रपत्र पढ़कर राजा आश्चर्यचकित रह गया। शाह ने एक-एक करके अनाज से भरे बारह कोठे खुलवाये। सबके साथ निकले ताम्रपत्र में यही लिखा था कि- ''यह सारा

अनाज अकाल पीड़ित मानवता का है।'' राजा ने झगड़ूशाह को गले लगा लिया और कहा- ''मैं तो कहने का राजा हूँ, लेकिन आप तो बेताज के बादशाह हो। मैं तो जनता को उधार देने की बात कह रहा था लेकिन आपने तो अपना सारा अनाज देकर जनता का उद्धार कर दिया। आप धन्य हो।''

''बुराई छोटी नहीं होती''

राजा भोज के दरबार में एक बार एक विचित्र प्रकार का भिखारी आया। भिखारी के शरीर पर कपड़े के नाम पर एक ऐसी कथड़ी थी, जो अनेक जगह से फटी हुई, जाल जैसी थी। राजा भोज ने कहा- भिक्षुकराज! ये कथड़ी आप कहाँ से ले आये? भिक्षुक ने कहा- राजन् ये कथड़ी नहीं, मछली फंसाने का जाल है। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि तुम माँस भी खाते हो, मछली भी मारते हो? बोला-मैं शराब भी पीता हूँ, राजा बोला- तुम शराब भी पीते हो? बोला- हाँ मैं शराब भी पीता हूँ, क्योंकि मैं वैश्या के यहाँ भी जाता हूँ। चूँकि मैं वेश्या के यहाँ जाता हूँ, इसलिये जुआ भी खेलता हूँ। जुऐं के पैसे के बिना वेश्या अपनी देहरी पर नहीं चढ़ने देती। राजा बोला- तुम वेश्या के यहाँ जाते हो, जुआ भी खेलते हो? वह बोला- हाँ, जुआं खेलने और वेश्या के यहाँ जाने के साथ-साथ मैं कभी-कभी चोरी भी किया करता हूँ, राजा भोज को बहुत आश्चर्य हुआ और तब उन्होंने कहा कि-तुम्हारा सारा जीवन ही दोषों से भरा हुआ है। तुम तो दोष समुदायों के पुंज हो। तब भिक्षु ने जबाव दिया-

छिद्रेष्वनर्था बहुला भवन्ति।

अर्थात् हे राजन्! थोड़े से दोष से ही बहुत सारे अनर्थ प्रकट हो जाते हैं। ऐसी बात जब राजा ने सुनी तब राजा को समझ में आ गया कि मेरे दरवाजे पर सामने खड़ा हुआ भिखारी कोई भिखारी नहीं, वे तो कालिदास हैं। जो राजा भोज को इस बात के लिये सचेत करने के लिये आये हैं कि छोटे-छोटे व्यसन धीरे-धीरे बहुत बड़ा रूप धारण कर लेते हैं।

वासना को जीता वात्सल्य ने

सेठ सुदर्शन एक अणुव्रती श्रावक थे। वे अतीव सुन्दर रूप और लावण्य से युक्त थे। पूरे पाटलीपुत्र में उन जैसा रूपवान कोई नहीं था। वे जितने रूपवान थे उतने ही विवेकी और साधक भी थे। वहाँ की रानी उनके रूप पर मुग्ध थी। उसने एक बार छल से उन्हें अपने राजदरबार में बुला लिया। एकांत पाकर उसने उनसे अपना अभिप्राय/प्रकट कर दिया। सेठ सुदर्शन रानी की काम पिपासा को सुनकर सन्न रह गये। उन्होंने अपनी असमर्थता जताते हुए कहा- ''यह मेरे जीवन में नहीं हो सकता। आप तो मेरी माता की तरह हो, शास्त्रों के अनुसार राजपत्नी और गुरुपत्नी माता की तरह हैं।'' रानी ने अपने सारे हथकंडे अपनाये पर सब बेकार रहे। अपना अभिप्राय पूर्ण होता न देख उसने 'तिरिया चरित्र' कर सेठ सुदर्शन को फँसा दिया। राजा कुपित हो गया, वह रानी के षड्यन्त्र को समझ नहीं सका। सुदर्शन सेठ को सूली की सजा दे दी गई। पर सत्य तो सूली पर भी अमर रहता है। सत्य प्रताड़ित हो सकता है, पर मर नहीं सकता। सूली की जगह सिंहासन बन गया। देवों ने सेठ सुदर्शन की जय-जयकार की।

इस घटना का सेठ सुदर्शन के मन पर बड़ा गहरा असर पड़ा। उन्हें वैराग्य हो गया और वे मुनि बन गये। मुनि बनने के बाद उन्हें पुन: एक बार परीक्षा के दौर से गुजरना पड़ा, सोने को ही कसौटी पर कसा जाता है। उनका कामदेव सा रूप देखकर एक वेश्या उन पर मुग्ध हो गई। वह उनका सामीप्य चाहती थी। उसने अपने हाव-भाव विलास से सुदर्शन मुनि को प्रभावित करने का प्रयास किया, पर वे अप्रभावित रहे। जिसे अपनी भीतरी चेतना का बोध हो जाता है वे बाहरी रूप पर मोहित नहीं होते। वेश्या अपने रूप का प्रदर्शन कर काम बाण फेंकती रही और सुदर्शन मुनि शरीर की अशुचिता का विचार करते हुए वीतराग भाव से अविचल खड़े रहे। मुनि को प्रभावित करने की कोशिश करने वाली वेश्या उनकी वीतराग वृत्ति से प्रभावित हो गई। वेश्या के मन में वासना थी, सुदर्शन मुनि जी का मन वात्सल्य से भरा था। वात्सल्य के आगे वासना हार गई। वस्तुत: वासना का प्रभाव दुर्बल मन पर ही पड़ता है। ''वासना एक कसौटी है। अग्नि सोने को परखती है और वासना मनुष्य के मन को''।

उद्देश्य रहित यात्रा, यात्रा नहीं भटकन

एक व्यक्ति बड़ी तेजी-से भागा जा रहा था। किसी युवक ने उसे टोकते हुए पूछा-

क्यों भाई! इतनी तेजी में कहाँ जा रहे हो?

उसने जवाब दिया-पता नहीं।

आ कहाँ से रहे हो?-युवक ने पुनः पूछा।

उसने कहा- यह भी पता नहीं है।

युवक आश्चर्यचकित रह गया। उसने विस्मय से पूछा- तुम क्यों जा रहे हो?

उसने कहा- यह भी पता नहीं।

उत्तर सुनकर युवक अचरज में पड़ गया। उसने पूछा-

अच्छा, तुम ये तो बताओ कि आखिर तुम हो कौन?

उसने कहा-ये भी पता नहीं।

ऐसे आदमी को हम पागल के अतिरिक्त क्या कहेंगे। यही बात आज के मनुष्य पर बहुत हद तक लागू होती है। आज के मनुष्य का जीवन पूर्णतः उद्देश्यविहीन है। वह तेजी से भाग रहा है, पर उसका कोई गन्तव्य नहीं है, उद्देश्य विहीन यात्रा, यात्रा नहीं भटकन है।

प्रशंसा और प्रोत्साहन
वह सद्गुण है जो मरणासन्न में भी
प्राण फूंक देती है।

''छोड़ दो गलत ट्रेन को''

एक बार यह हुआ कि एक युवक ट्रेन में सफर कर रहा था और अपने दोनों पैर के घुटनों पर सिर रखकर रोये जा रहा था। ट्रेन में भीड़भाड़ नहीं थी। सामने एक वृद्धा बैठी थी। उस बूढ़ी अम्मा से युवक का रोना नहीं देखा गया, उसने युवक से पूछा-कि-बेटे, तू मुझे अपनी माँ समझ। तेरे ऊपर क्या आपत्ति आ पड़ी है? तू मुझे बता। मैं तुझे हर संभव मदद दूँगी। बुढ़िया के इस आत्मीय आग्रह को देखकर युवक ने अपनी गर्दन उठाई। एक बार बुढ़िया को देखा और रोने लगा। अब तो बुढ़िया भी उसके साथ रोने लगी। बोली-तू क्यों रो रहा है? तेरे रोने का क्या कारण है, बता। अब की बार बहुत झकझोर कर उसने उठाया तो युवक ने कुल इतना ही बताया। क्या बताऊँ अम्मा- मैं गलत गाड़ी में बैठ गया हूँ। उस अम्मा ने कहा- बेटे गलत गाड़ी में बैठ गये हो तो रोने से क्या होगा। अगले स्टेशन पर उतर जाना और गाड़ी बदल लेना। मालूम है, उस युवक ने क्या कहा? बोला- अम्मा ऐसा तो मैं बहुत देर से सोच रहा हूँ पर आजकल बिना रिजर्वेशन के गाड़ी में बैठा नहीं जा सकता। अब मैं दूसरी गाड़ी में बैठूँगा, यदि भीड़ होगी तो पता नहीं जगह मिले या न मिले। यह डिब्बा एकदम खाली है। इस डिब्बे को छोड़कर मैं दूसरी गाड़ी में कैसे बैठूँ?

यही स्थिति हर इंसान की है। वह गलत गाड़ी में बैठ गया है। रोना रोता है। सन्त कहते हैं कि- गाड़ी बदल लो। वह कहता है कि- महाराज, ये घर-परिवार का डब्बा छूट जायेगा तो काम कैसे चलेगा? डब्बे के व्यामोह में हम गाड़ी को नहीं बदलना चाहते। जब तक गाड़ी नहीं बदलेंगे, हमारी यात्रा कैसे सही होगी?

**अपने मन में
न तो दीनता लाओ और
न ही अभिमान।**

''आदमी की दौड़''

एक गरीब किसान अपने सीमित संसाधनों में संतुष्ट होकर जिया करता था।एक दिन कोई फकीरउसके दरवाजे पर आया। किसान ने अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप उनका आत्मीय स्वागत-सत्कार किया। फकीर को अपने घर भोजन कराया। फकीर उसकी सेवा से प्रसन्न हुआ और बोला- बच्चा, बताओ तुम क्या करते हो? किसान ने अत्यन्त विनम्रता से कहा- प्रभु ढाई बीघा जमीन है। उसे जोतकर अपने परिवार का पेट पालता हूँ और आप जैसे सन्तों की रज को माथे पर लगाकर अपने जीवन को धन्य करता हूँ। फकीर ने कहा- बस, तुम्हारे पास केवल ढाई बीघा जमीन है। तुम तो बड़े गरीब हो। किसान को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह जानता नहीं था कि गरीबी क्या है? क्योंकि उसने अमीर बनने की चाह ही पैदा नहीं की थी। सन्त ने बतलाया- गरीब वह होता है, जिनके पास थोड़ी जमीन-जायदाद होती है और अमीर वह होता है जिसके पास बहुत जमीन-जायदाद है। उसने सोचा- अच्छा, मुझसे भी ज्यादा जमीन-जायदाद के लोग इस दुनिया में हो सकते हैं। वे लोग अमीर हैं। सन्त ने कहा- हाँ, वे अमीर हैं। किसान बोला- क्या मैं भी अमीर बन सकता हूँ? फकीर ने कहा- हाँ, बच्चे तूने मेरी सेवा की है। मैं तुझे एक मार्ग बताऊँगा, जिससे तू भी अमीर बन जायेगा। जैसे ही सन्त से अमीर बनने की राय सुनी, वह आदमी एकदम गरीब हो गया, क्योंकि अमीर बनने की लालसा उसके मन में जग गई।

गरीब वह नहीं जिसके पास कुछ नहीं। गरीब वह है जिसे बहुत कुछ पाने की चाह है। भूखा वह नहीं, जिसके पास खाने को कुछ नहीं और खाने की चाह भी नहीं। भूखा तो वह है, जिसने दो लड्डू खा लिये, दो थाली में हैं, फिर भी पड़ोसी के दो लड्डू को हथियाने में लगा है।

शास्त्रकारों ने पूछा- को हि दरिद्रो, यस्य तृष्णा विशाला। दरिद्र कौन है? जिसके मन में तृष्णा ज्यादा है, चाह ज्यादा है। जो चाह करता है, वह भिखारी होता है। जो चाह को मार देता है वह शहंशाह हो जाता है। उस किसान के मन में भी अमीर बनने की चाह जगी। फकीर ने किसान से कहा- बेटा, मैं तुम्हें एक

मन्त्र देता हूँ। दो दिन के उपवास से इस मन्त्र की साधना करना, देवता प्रसन्न होंगे। फिर तुम जो चाहोगे वह सब पा लोगे। उसने उत्साहपूर्वक फकीर से प्राप्त मन्त्र और मन्त्र की विधि समझी फिर दो दिन के उपवास के बाद उस मन्त्र की साधना की। कहते हैं कि मन्त्र की साधना से प्रभावित होकर देवता प्रसन्न हुए। देवता ने उससे कहा- दूर-दूर तक ये जितनी भी जमीन तुम देख रहे हो, यह सारी जमीन मेरी है। एक काम करना। कल सुबह सूरज उगते ही तुम दौड़ना शुरू करना, सूरज ढलते तक तुम जितनी जमीन घेर लोगे, वह सब मैं तुम्हारे नाम कर दूँगा।

किसान बड़ा प्रसन्न हुआ। घर आया और सोचा समय होते ही दौड़ना शुरू कर दूँगा। सुबह उठा, उठकर चला, एकदम तीर की तरह। कुछ खाया-पिया भी नहीं, क्योंकि दौड़ने में दिक्कत जायेगी। उसने अपने कंधे पर पानी का एक बैग लटकाया और पूरी ताकत से दौड़ना शुरू कर दिया। बड़ी तेजी से दौड़ा, पूरी शक्ति से दौड़ा। दौड़ते-दौड़ते उसका कण्ठ सूख गया। पर उसने पानी पीने की भी कोशिश नहीं की, क्योंकि उतनी देर में दो-चार डग जमीन कम हो जाती। उसने देखा कि मैंने थोड़ी देर में ही काफी लम्बी दूरी तय कर ली है। दिन ढलने में बहुत समय बाकी है अभी और दौड़ा जाये। दौड़ते-दौड़ते जब वह मीलों आगे आ गया, उसे लगा कि दिन ढलने वाला है, लौटना भी है। हालात थककर चूर हो गये। फिर भी अपनी शक्ति को बटोरकर लौटते हुए उसने दौड़ना शुरू किया। दौड़ते-दौड़ते एक जगह ठोकर खाकर गिरा और हमेशा को गिर गया। वहीं ढेर हो गया। कहते हैं कि वह देवता आये और देवता ने उसी स्थान पर उसकी कब्र बना दी और उस पर एक शिलालेख अंकित किया जो आज तक अंकित है। उसमें लिखा था- बस, इतनी सी जमीन की खातिर यह आदमी सारी जिंदगी दौड़ता रहा।

कभी किसी की संवेदना पर आघात न पहुँचाओ।

णमोकार मंत्र की महिमा

एक बार की बात है ब्र. सूरजमल ''बाबा जी'' जो निवाई के रहने वाले थे वे ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। उनके पास अपना रिजर्वेशन टिकिट था। वे अपनी सीट पर जाकर बैठ गये। कुछ देर बाद उनके सामने वाली सीट पर एक औघड साधु आकर बैठा। उस कम्पार्टमेन्ट में अन्य यात्री भी अपनी-अपनी सीट पर बैठ थे। कुछ समय पश्चात् ट्रेन चली। जब ट्रेन ने गति पकड़ ली तो वह औघड साधु सभी यात्रियों को ड़राने लगा जिससे सभी यात्री ड़रकर अन्य कम्पार्टमेन्ट (डब्बे) में चले गये। अब मात्र उसके सामने की सीट पर ''बाबा जी'' बैठे थे। वह साधु उनसे बोला ''ऐ बच्चा उठ जा नहीं तो कच्चा खा जाऊँगा।'' बाबा जी भी ड़रने वाले नहीं थे उन्होंने सहज जवाब दिया ''मैं क्यों उठूँ मैंने टिकिट लिया है और मैं अपनी सीट पर बैठा हूँ और वे अपनी माला निकालकर णमोकार महामंत्र की माला जपने लगे। इधर वह औघड साधु उन पर मंत्र-तंत्र का प्रयोग करने लगा परन्तु णमोकार मंत्र के प्रभाव से ''बाबा जी'' पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जब वह मंत्र प्रयोग से पसीना-पसीना होकर थक गया तो अपने स्थान से उठा और बोला अभी आता हूँ और सीधा टॉयलेट (बाथरूम) में गया। कॉफी देर बाद भी वह नहीं आया अन्य यात्रियों ने सोचा ट्रेन कहीं भी रूकी नहीं वह साधु कहाँ गया। बाथरूम की खिड़की से झाँककर देखा, वह वहीं ढ़ेर हो गया था। उसने बाबा जी पर मारण मंत्र (मूठ) का प्रयोग किया था। उस मंत्र का यह प्रभाव है कि या तो वह जिसे टारगेट बनाया उसे मार देगा, सामने वाले पर उसका असर नहीं पड़ा तो जो प्रयोग करता है उसे मार देगा। यही हुआ णमोकार मंत्र से वह बाबा जी का कुछ नहीं बिगाड़ पाया अपने स्वयं का ही अन्त कर लिया। यह है ''णमोकार मंत्र की महिमा''।

अहसान देकर भूलो,
लेकर नहीं।

समझदार खरगोश

जंगल का राजा शेर प्रतिदिन जंगल में विचरण करने वाले जानवरो का शिकार करके खाता। इससे सभी जानवर भय ग्रस्त रहते थे। एक बार सभी जानवरो ने मिलकर एक मिटिंग की और तय किया की हममें से प्रतिदिन एक-एक जानवर शेर के पास चला जाये जिससे शेष अन्य प्राणी तो निश्चिन्तता का जीवन जी सकेंगे। यह प्रस्ताव सबको अच्छा लगा वे शेर के पास गये और बोले हे वनराज! आप हमारे राजा है और प्रजा के रहते राजा को शिकार के लिए यहाँ-वहाँ भटकना पड़े। धिक्कार है हमें कभी-कभी तो शिकार भी नहीं मिलता होगा और आपको भूखे रहना पड़ता होगा। अतः हम लोगो ने एक प्रस्ताव पारित किया है। आज से प्रतिदिन हममें से एक-एक प्राणी आपके पास आकर आपकी भूख को शांत कर देगा। शेर को प्रस्ताव पसन्द आ गया। अब प्रतिदिन समय पर जंगल का एक प्राणी जिसका नम्बर होता वह उसका ग्रास बन जाता था।

एक दिन खरगोश की बारी थी। वह जाने में लेट हो गया। जंगल के सभी जानवर बोले तुम अभी तक गये नहीं? खरगोश बोला चिंता मत करो मैं आज सभी को हमेशा के लिए निश्चिंत कर दूँगा। इतना कहकर वह शेर के पास जाने लिए उद्यत हुआ। इधर शेर समय पर प्रतीक्षा कर रहा था कि आज कोई आया क्यों नहीं? गुफा के बाहर आकर देखा कि एक खरगोश आ रहा है। शेर ने सोचा- एक तो इतना लेट आया और दूसरा इतना छोटा सा प्राणी जो मेरे नाश्ते के बराबर भी नहीं है। खरगोश हाँफता-काँपता शेर के चरणों में पहुँचा और बोला आप जल्दी मुझे अपना भोजन बनालो आज तो मैं आ गया अब हो सकता है कल कोई भी न आ सके क्योंकि आज रास्ते में मुझे एक दूसरा शेर मिला वो बोला जंगल का राजा मैं हूँ- तुम कहाँ जा रहे हो वो तो मैं छोटा जानवर था सो जैसे-तैसे झाड़ियों में छिपते हुये आप तक आ गया किन्तु अब आगे कोई नहीं आ पायेगा। इतना सुनते ही शेर गुस्से में आग-बबूला हो गया बोला कहाँ है वो शेर? खरगोश उसे अपने साथ ले आया और एक कुऐं के

अन्दर झाँकते हुए बोला इसी गुफा से बाहर वो आया था। शेर कुऐं में झाँककर देखता है तो उसे अपना ही प्रतिबिम्ब नजर आता है वह सोचता है, खरगोश सच बोल रहा है और जोर से दहाड़ता है कुएँ के भीतर से भी दहाड़ने की आवाज आती है, वह अपने ही प्रतिबिम्ब को मारने के लिए छलांग लगा देता है और प्राणो से हाथ धो बैठता है। इस प्रकार एक समझदार खरगोश ने न केवल अपनी जान बचायी अपितु जंगल के अन्य जानवरों को भी हमेशा के लिए अभयदान दे दिया।

समय की कीमत

आजकल के माता-पिता बच्चों को सब कुछ देते है पर समय नहीं देते। ऐसे ही एक शहर के व्यस्त पिता की यह घटना है। उनका बेटा लगभग 10-12 साल का था परन्तु उसने अपने पिता को कभी घर पर नहीं देखा था। जब उठता उसके पूर्व ही पिता फेक्ट्री चले जाते और जब पिताजी लौटकर आते तो वह सो जाता था। एक दिन बेटे की मुलाकात पिताजी से हुई। बेटे ने पिताजी से कहा-पिताजी आप एक घण्टे में कितना कमा लेते है। पिताजी बोले- क्यों? बेटा- नहीं बस यूँ ही, बताइये न एक घण्टे में आप कितना कमा लेते हो। पिताजी ने कहा- ये ही कोई 3000 रु.। वह बोला आपके पास 500 रु. है। पिताजी ने जेब से 500 रु. निकालकर बेटे को दे दिये। उसने अपनी गुल्लक खोली जिसमें पूरे 2500 रु. जमा किये हुये थे। पिताजी के हाथ में देते हुए बेटे ने कहा ये लो पापा पूरे 3000 रु. और मुझे एक घण्टा दीजिये। ये है आज के समाज की तस्वीर। केवल जन्म देना पर्याप्त नहीं समय देना भी परम आवश्यक है।

उत्तराधिकारी का चयन

एक व्यक्ति के सामने अपने तीन पुत्रों में से उत्तराधिकारी के चयन का प्रश्न था। उसने अपने तीनो पुत्रो की परीक्षा करनी चाही। तीनो को 500-500 रु. देते हुए कहा कि आप तीनो को ये तीन कक्ष दिये जाते है इन रुपयो से इसे तीन दिन में पूरा भरना है। पहले ने सोचा 300 रु. में तो कक्ष कैसे भरेगा महंगाई का जमाना है, अतः कुछ ज्यादा धन चाहिए।

एक काम करता हूँ इन 500 रु. से सट्टा खेलता हूँ यदि भाग्य ने साथ दिया तो कुछ अधिक धन हो जायेगा और उस धन से इस कक्ष को पूराभर दूँगा। बस क्या था? उसने 500 रु. सट्टा में लगा दिया और हार गया। दूसरे ने सोचा सबसे सस्ती वस्तु क्या है उसका ध्यान नगरपालिका के कचरे की ओर गया जो कचरा बाहर फेंकते है ट्रक वाले को कहकर उस कक्ष में ड़लवा दिया कक्ष पूरा भर गया। तीसरे ने सोचा पिताजी के इस कथन में जरूर कोई राज है। अतः वह विचार करने लगा दो दिन बीत गये। शाम को माँ मन्दिर आयी दीपक जलाया पुरे मन्दिर में उजाला हो गया। बस उसे सूत्र मिल गया । पिताजी ने निर्धारित समय पर तीनो को बुलाया। पहले से पूछा- तो वह मुँह लटकाये था बोला पिताजी भाग्य ने साथ नहीं दिया। दूसरे ने जैसे ही पिताजी को दिखाने के लिए कक्ष खोला इतनी बदबू की उन्हें नाक पर रूमाल लगानी पड़ी। तीसरे से पूछा तो वह पिताजी को बोला बस एक मिनिट में बताता हूँ। उसने वहाँ रखी फोटो के सामने दीपक जलाया पूरा कक्ष उजाले से भर गया एक अगरबत्ती का पैकेट था उसमें से अगरबत्ती जलायी पूरा कक्ष खुशबू से भर गया। ये सब काम मात्र 50 रु. में पूरा हो गया था 450 रु. वापस पिताजी को लौटा दिया। पिताजी ने उस तीसरे पुत्र को अपनी छाती से लगा लिया। ये है समझदारी।

आओं करें बीजों की रक्षा

एक व्यक्ति को तीर्थयात्रा पर जाना था। उसके तीन पुत्र थे। तीनो को बुलाया हाथ में एक-एक पोटली देते हुए बोला ये विशेष बीज है इन्हें सुरक्षित रखना है मैं तीर्थयात्रा पर जा रहा हूँ और वह तीर्थ वंदना हेतु चला गया। इधर प्रथम पुत्र ने सोचा पिताजी ने अपने हाथो से बीज दिये है जरूर कुछ विशेष होगा अतः इन्हें तिजोरी में रख दिया और ताला बंद कर दिया ताकि कोई चोरी न कर ले जाये। दूसरे पुत्र ने सोचा ये बीज हम अभी बेच देते है जब पिताजी आयेंगे तो फिर से खरीदकर दे देंगे। तीसरे पुत्र ने विचार किया पिताजी ने बीज दिये है, सुना है बीजों की सुरक्षा तो धरती में ही होती है। अतः अपने घर के पिछवाड़े में गया जो कोई थोड़ी बहुत जमीन थी उसे ठीकठाक करके उसमें बो दिया। कुछ समय बाद पिताजी तीर्थयात्रा से लौटकर आये पहले पुत्र को बुलाया और पूछा बेटा बीज कहाँ है वह बोला अभी लाता हूँ। जल्दी से गया तिजोरी खोली किन्तु ये क्या सभी बीज घुन चुके थे, वे कोई काम के नहीं रहे। दूसरे ने बाजार से उतने ही दूसरे बीज लाकर दे दिऐ। पिताजी बोले ये तो वो बीज नहीं है। तीसरे पुत्र से पूछा। उसने कहा आप ही चलकर देख लीजिए घर के पिछवाड़े में लेकर गया वहाँ फसल लहलहा रही थी। उसके इस कार्य को देख पिताजी ने छाती से लगा लिया और कहा सच में तुम्हीं ने बीजो की सही रक्षा की है। इसी तरह से हमे भी गुरुजनो एवं जिनवाणी से जो सूत्र रूप बीज मिले है उनकी रक्षा करना है।

**संसार में सब कुछ
दुबारा मिल सकता है,
पर माँ नहीं।**

जगाओ सोये शेर को

एक बार ऐसा हुआ कि शेर का बच्चा सियारो की टोली में जा मिला। वह सियारो के साथ ही उठता-बैठता और खेलता था उन्हीं जैसा खाता और उनकी ही बोली बोलने लगा था। अब अपने आपको सियार ही मानने लगा कोई भी शेर दिखता तो सभी सियारो के साथ वह भी दुम दबाकर भाग जाता। एक दिन एक बुढ्ढे शेर ने देखा की ये जवान शेर भी सियारो के साथ भागा जा रहा है। उसने उस सियार पालित शेर को रोका और कहा तुम कहाँ भाग रहे हो तुम तो शेर हो। सियारो के बीच पला वह शेर बोला क्यों मजाक करते हो मैं तो बचपन से इन्हीं सियारो के साथ रहा हूँ- मैं सियार हूँ। बुढ्ढा शेर बोला यदि विश्वास न हो तो चलो मेरे साथ उसे एक तालाब के किनारे ले गया उसे अपना और उसके स्वयं का प्रतिबिम्ब दिखाते हुए बोला देखो तुममें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। फिर सियार पालित शेर के भीतर के शेर को जगाते हुए कहा दहाड़ लगाओ। जैसे ही जवान शेर ने दहाड़ लगायी सभी जानवर भाग गये। वह अपने स्वभाव को जान गया अभी तक पता नहीं होने से उसे भूला बैठा था। आप भी शेर है पर सियारो के बीच रहकर सियारो जैसा ही जीवन जी रहे है अपने भीतरी शेर को जाग्रत करें।

यदि तुम किसी को
ऊपर उठाना चाहते हो तो
इसके लिए तुम्हें स्वयं का स्तर
ऊँचा उठाना होगा।

पुनर्मूसको भव

एक बार की बात है एक चूहा हॉफता-कॉपता साधु के चरणों में पहुँचा बोला बचाओ-बचाओ, त्राहिमाम्-त्राहिमाम् साधु ने कहा क्या बात है इतने घबरा क्यों रहे हो। चूहा बोला वह बिल्ली मेरे पीछे लगी है। साधु को वचन-सिद्धि थी बोले क्या बनना चाहते हो चूहे ने कहा मुझे बिल्ली बना दो। साधु ने कहा- मार्जार भव इतना कहते ही चूहा बिल्ली बन गया। वही बिल्ली एक दिन फिर साधु के चरणों में पहुँची बोली महाराज बचाओ। अब क्या हुआ साधु ने पूछा। बिल्ली ने कहा- वह कुत्ता मेरे पीछे लगा है आप मुझे कुत्ता बना दे साधु ने कहा जाओ श्वान भव और इतना कहते ही बिल्ली कुत्ता बन गयी। कुछ दिनो बाद वह कुत्ता साधु चरणों में आया ओर बोला है स्वामी आपने मुझे क्या बना दिया जहाँ भी जाता हूँ दुरदुराया जाता हूँ गली के बच्चे लोग मेरे ऊपर पत्थर फेंककर मेरा तिरस्कार करते है आप तो मुझे जंगल का हिरण बना दो। साधु ने कहा ''मृगो भवः'' इतना कहते ही कुत्ते ने सुन्दर हिरण का रूप ले लिया। एक दिन वही हिरण फिर हॉफता कांपता साधु के चरणो में आकर जीवन की भीख माँगने लगा बोला बचाओ महाराज! अब क्या हुआ? साधु बोले। जंगल का राजा शेर मेरे पीछे पड़ा है। साधु ने कहा जाओ मृगेन्द्र भव और वह शेर बन गया। जैसे ही शेर बना उसने विचार किया कि साधु का क्या भरोसा कब मन पलट जाये जो मुझे चूहे से शेर बना सकते है वे शेर से चूहा भी बना सकते है क्यों न इन साधु को ही अलग कर दिया जाये अभी तो मैं शेर हूँ। बस इतना सोचकर वह साधु पर झपटने ही वाला था कि साधु ने तुरंत कहा- पुनर्मुसकोभव और इतना बोलते ही वह शेर पुनः चूहा बन गया। हंसी आ रही होगी आपको किन्तु यह प्रत्येक प्राणी की स्थिति है जिस पुण्य के योग से यह संसारी प्राणी नरक-निगोद से निकलकर मनुष्य रूपी शेर बनता है वह उसी पुण्य को खाने लगता है तो पुनः वही नरक-निगोद में पहुँच जाता है। अतः हमें पुण्य को खाना नहीं पुण्य को बढाना है।

जो मिला वह कम नहीं

कोयल का बच्चा मोर के सुन्दर पंखो को देख मचल उठा। अपनी माँ से बोला मुझे मोर जैसे सुन्दर पंख चाहिए। माँ ने बहुत समझाया बेटा- प्रकृति से जो मिला है वह बहुत ही सुन्दर है। परन्तु कोयल का बच्चा कहाँ सुनने वाला था। वह तो जिद्द करने लगा कि मुझे तो मोर जैसे सुन्दर पंख चाहिए। बच्चो की जिद्द के आगे माता-पिता भी हार जाते है। कोयल अपने बच्चे की भावना पूर्ण करने के उद्देश्य से मोर के पास गयी बोली मोर भैया मेरा बच्चा आपके सुन्दर पंख देख मचल उठा है आप अपना एक पंख मुझे दे दीजिए यह सुन मोर ने तुरंत अपना एक पंख नीचे गिरा दिया। कोयल ने उसे उठाकर अपने बच्चे के पंखो में लगा दिया। कोयल का बच्चा मोर का पंख पाकर जोर-जोर से कूकने लगा। कोयल की सुरीली आवाज सुनकर मोर का बच्चा रोने लगा और कहा कि मेरी आवाज बहुत बेसुरी है मुझे तो कोयल जैसी सुरीली आवाज चाहिए।।

आज की दशा यही है जो पाता है उसमें संतुष्ट नहीं है। दूसरे की और ही नजर किये रहता है। आचार्य श्री ने कहा है- ''जो पाता है सो भाता नहीं है जो भाता है सो पाता नहीं है इसीलिए सुख साता नहीं है।''

पाप मनुष्य की परछाईं की तरह उसका पीछा करता है।

बांसुरी और ढोलक

मन्दिर में रखे ढोलक ने बांसुरी से कहा देखो तो बहिन ये कैसा पक्षपात है। जो भी आता है तुम्हे अपने होठों से लगा लेता है और मेरी दोनो ओर से धमाधम पिटाई करता है। बांसुरी ने ढोलक के इन शब्दो को सुन बड़ी ही करुणा के साथ कहा। भैया! ये बात सत्य है कि जो भी आता है मुझे अपने होठों से लगाता है और आपकी पिटाई करता है पर इसमें पक्षपात नहीं। इसके दोषी आप स्वयं है। ढोलक ने तेज स्वर में कहा वो कैसे? बांसुरी ने कहा- मुझे जो भी हाथ में लेता है वह अपने होठों से लगाकर मेरे भीतर फूंक मारता है, मैं अपने छिद्रो द्वारा भीतर का सारा कचरा बाहर कर देती हूँ पर तुम हो कि अपना सारा विकार अपने भीतर ही भरे रहते हो इसीलिए जो भी आता है दोनो और से धमाधम तुम्हारी पिटाई करता है।

संसार में भी जो विकारो को बाहर कर देता है दुनिया उसकी पूजा करती है और जो विकारो से भरा रहता है उसकी पिटाई होती है।

बुराई करो मत करना पड़े।
अच्छाई करो करना न पड़े।

सच्चे राष्ट्र चिंतक संत - आचार्य विद्यासागर जी

परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के बारे में कुछ भी कहना सूरज को दीपक दिखाने जैसा ही है उनके गुणों का बखान तो समुद्र की गहराई को नमक की पुतली से नापने जैसा है। वो इतना चले की चलते-चलते स्वयं राह बन गये, वो इतना तपे की तपते-तपते स्वयं तप बन गये। एक बात अवश्य कहना चाहता हूँ आचार्य श्री परम आध्यात्मिक पुरुष हैं। आचार्य कुन्द-कुन्द के बताये मार्ग पर स्वयं चल रहे हैं और अन्य को चला रहे हैं। वे मूलाचार की चर्या का पालन करते हुए समयसार में लीन रहते हैं किन्तु जब वर्तमान भारत की दशा देखते हैं तो बहुत दु:खी होते हैं।

जिन्हें आत्मा की बात बतानी चाहिये वे अब इंसान बनाने की बात करते हैं। जिनकी चौकी पर समयसार आदि महान ग्रन्थ रहते थे वहाँ अब मेरे सपनों का भारत जैसी पुस्तक देखने को मिलती है।

अब समय आ गया है जागने का। आचार्य श्री जो कह रहे हैं उसको समझने एवं उस पर चलने का। वे अपने अनुभव से हमें बता रहे हैं। अपने इतिहास को लौटाने की आवश्यकता है। कुछ मुख्य बिन्दु जो उस इतिहास को लौटाने के लिये आचार्य श्री परम आवश्यक मानते हैं।

१. अंग्रेजी माध्यम हटाकर हिन्दी माध्यम लाना।

२. इण्डिया नहीं भारत का प्रयोग करना।

३. हथकरघा के माध्यम से रोजगार की बहुत बड़ी समस्या दूरकर शुद्ध जीवनशैली अपनाना।

४. कृषि एवं पशुपालन (गौपालन) से रामराज्य की स्थापना करना।

५. शिक्षा को जीवन में प्रायोगिक बनाना (७२ कलाओं से युक्त करना)।

पूज्य आचार्य श्री संकेत बहुत कम करते हैं, अब यदि समाज-देश के लिये संकेत किये हैं तो हमें अक्षरश: पालन कर इस मार्ग पर बढ़ जाना चाहिये। इसी में हमारी भलाई है। शुरुआत किसी दूसरे से नहीं अपने से करना प्रारम्भ कर देना चाहिये। स्वाभिमान को जाग्रत कर गुरुवाणी को अपनाने की महती आवश्यकता है। समझदार के लिये ईशारा ही काफी है।

- बा.ब्र. रोहित भैया

(सम्प्रति संधानसागर जी महाराज,

संघस्थ आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज)